अंक 3

मार्च 2013

वैदिक विचारधारा का पोषक

आर्य मुसाफिर

केरल वैदिक मिशन नई दिल्ली का मासिक मुखपत्र

हम परम्परा से बलिदानी, बलिदान हमारी परम्परा

आर्य बलिदानी धर्मवीर पं. लेखराम आर्य पथिक

प्रबन्ध सम्पादक
रामनिवास ''गुणग्राहक''

संस्थापक
प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु

सम्पादक
सत्येन्द्र सिंह आर्य

प्रकाशक :

केरल वैदिक मिशन 468, नीमड़ी कॉलोनी, नई दिल्ली

वार्षिक शुल्क ₹ 120/- आजीवन शुल्क ₹ 1000/- एक प्रति का मूल्य ₹ 10/-

होली

(रामनिवास 'गुण ग्राहक' 09971171797)

होली खेलने के लिए प्यार चाहिए, हृदय में समता का सार चाहिए।
लाल-पीले रंग नेह में घुले न हों, मुझको न ऐसा संसार चाहिए।।

1. रंग हों गुलाबी लाल पीले व हरे, हृदय हों प्यार प्रीति नेह से भरे।
मानवता मन में मनुष्य के जगे, ऐसी मीठी-मीठी मनुहार चाहिए.... होली खेलने.....
2. लाल रंग लाज का है पीला प्रीति का, ज्ञान का गुलाबी और नीला नीति का।
ऐसे रंगों से धरा को रंग डालिए, ऐसा ही सलोना श्रृंगार चाहिए....
3. कामना कुटिल हों कपट से भरी, मुख में हो मीठी वाणी हाथ में छुरी।
धोखेबाजी शोषण का काला मुँह करे, ऐसा काला-काला कोलतार चाहिए....होली खेलने.....
4. आज देश और धर्म खण्ड खण्ड है, पाप का प्रचार हो रहा प्रचण्ड है।
कालिमा कलुष के किले जला सके, होलिका से ऐसा अंगार चाहिए....होली खेलने.....
5. मानव को दानवों ने बाँट दिया है, जातिवाद से समाज को काट दिया है।
एकता के सूत्र में बंधे ये देश फिर, ऐसा कोई नया उपचार चाहिए....होली खेलने.....
6. भारत में भूखे पेट कौन सो रहा, किसका ये पुत्र दूध बिन रो रहा?
किसके विदेशों में करोड़ों है जमा, जानने का हमें अधिकार चाहिए....होली खेलने.....
7. भारत की माटी से न प्यार है जिसे, लाख-लाख बार धिक्कार है उसे।
देश द्रोहियों की गर्दनें उड़ा सके, ऐसी तेज तीखी तलवार चाहिए....होली खेलने.....
8. शीलता समानता के सेवक कहाँ ,देश धर्म जाति के हैं सेवक कहाँ?
आगे आओ देश के दुलारे नौजवाँ, देश को तुम्हारा उपकार चाहिए....होली खेलने.....
9. छोड़े दो नशीले व विषैले खानपान, देश आज फिर माँगता है बलिदान।
तेज-ओज में तेरी सुभाष के समान, वीर रस भरी हुँकार चाहिए....होली खेलने.....
10. ऐसे खेलो मेरे देश वासियोंहोली, कह दो न हो अनीति होनी सो होली।
युवक बुराइयों से दूर हों मुझे, होली का यही तो उपहार चाहिए....होली खेलने.....

सामाजिक व सदाचार पुनर्निर्माण का
मासिक-पत्र

आर्य मुसाफिर

वर्ष-1 मार्च 2013 अंक-3

वार्षिक शुल्क ₹ 120/-
आजीवन शुल्क ₹ 1000/-
एक प्रति का मूल्य ₹ 10/-

●

प्रकाशक :
केरल वैदिक मिशन
नई दिल्ली

विशेष : आर्य मुसाफिर में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

विषयानुक्रमणिका

होली	2
संपादकीय	3
आर्य समाज : एक समग्र....	7
होली का शास्त्रीय स्वरूप	10
जगत का निर्माण	16
जीते विरोधी सैंकड़ों...	19
काशी और आर्यसमाज...	24
हम परम्परा के बलिदानी...	27
महिमा आर्यसमाज की	28

दयानन्द मठ दीनानगर (पंजाब)2 (हीरक जयन्ती वर्ष)

दीनानगर में जो दयानन्द मठ आज एक विशाल वट-वृक्ष के रूप में सुस्थापित है उसे एक छोटे से पौधे के रूप में रोपने वाले, उसका पोषण और रक्षण करने वाले यही स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज थे।

पूर्ण विकसित विशाल संस्थान का रूप दयानन्द मठ ने जिनके जीवन काल में ग्रहण किया, दूसरे ऐसे नर-पुंगव स्वामी सर्वानन्द जी महाराज थे। यह एक विचित्र समानता है कि जिस प्रकार स्वामी विरजानन्द जी महाराज जैसे व्याकरण के सूर्य को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जैसा सुयोग्य शिष्य मिल गया था, वैसे ही स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज को पं. रामचन्द्र (बाद में स्वामी सर्वानन्द जी) के रूप में एक बहुत कर्त्तव्य निष्ठ, ऋषि भक्त, निष्ठावान, परिश्रमी और अपूर्व सेवा भावी शिष्य मिल गया। वर्ष 1901 ईसवी में जन्मे पं. रामचन्द जी में कुछ पूर्व जन्म के संस्कार ऐसे थे कि उन्होंने खुर्जा, दिल्ली आदि में संस्कृत पढ़ने का प्रयास किया परन्तु तृप्ति नहीं हुई। अन्ततोगत्वा स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के चरणों में श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में प्रवेश पाकर ही मन सन्तुष्ट हुआ। आप अकेले सिद्धान्त शिरोमणि कक्षा में पढ़ा करते थे। सन् 1932 में आप स्नातक बन गए। जबकि उन दिनों प्रायः विद्यार्थी सिद्धान्त विशारद व सिद्धान्त भूषण से आगे नहीं पढ़ते थे। पं. रामचन्द्र जी ने स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के दर्शन तो अपने दिल्ली के अध्ययन काल में एवं सन् 1925 में महर्षि की जन्मशताब्दी के अवसर पर मथुरा में किए थे, परन्तु श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में जब आप स्वामी जी के पास चले गए तो बस ऋषि के मिशन का काम करने के लिए सर्वात्मना स्वामी जी के ही हो गए। पं. रामचन्द्र जी ने काषाय वस्त्र तो स्वामी जी के आदेश पर वर्ष 1955 में ग्रहण किये और स्वामी सर्वानन्द नाम पाया परन्तु वैराग्य का भाव तो आपके मन में आरम्भ से ही था। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी जैसे जिन मनीषियों ने स्वामी सर्वानन्द

जी को निकट से और निरन्तरता के साथ देखा है, उन्हें यह कहने में कोई संकोच नहीं होता है कि श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने अपना सारा जीवन, शक्ति और सामर्थ्य मठ की सेवा में लगा दी। उन्हीं के अथक परिश्रम का परिणाम मठ का वर्तमान स्वरूप है। स्वामी सर्वानन्द जी महाराज मठ की स्थापना से पूर्व ही किस प्रकार इस पूरी प्रक्रिया से जुड़े हुए थे, इसका उल्लेख माननीय प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने इस प्रकार किया है- "पं. रामचन्द्र जी जब श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय में पढ़ते थे तो स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज तभी इनसे यह विचार किया करते थे कि एक साधु आश्रम बनायेंगे। स्वामी जी महाराज का यह दृढ़ मत था कि साधु महात्मा ही धर्म प्रचार का कार्य सुन्दर रीति से कर सकते हैं। अपने एक लेख में श्री स्वामी जी ने लिखा था- "गृहस्थी यदि इस कार्य को करता है तो वह इन दोनों में से एक को अवश्य बिगाड़ेगा अर्थात् यदि वह उपदेशक के कार्य को पूरे दायित्व से करेगा तो आवश्यक है कि उसका गृहस्थ ठीक न रहे और यदि वह गृहस्थ का पूरा ध्यान रखे तो उपदेश कार्य बाधाति होता रहेगा।'' वह गृहस्थी उपदेशकों की कठिनाइयों को अनुभव करके स्वामी जी ने साधु महात्माओं के निर्माण व प्रशिक्षण के लिए दीनानगर में सन् 1937 में मठ की स्थापना की।

आर्य समाज के एक स्वर्गीय संन्यासी शास्त्रार्थ महारथी स्वामी योगेन्द्र पाल जी की कुटिया 'देव भवन' में आकर श्री महाराज ने डेरा लगा दिया। थोड़ा ही समय बीता था कि स्वामी जी को हैदराबाद सत्याग्रह के प्रसिद्ध युद्ध का संचालन करना पड़ा। मठ के पास थोड़ी से भूमि थी। वह भी ऊबड़-खाबड़ और ऊँचे-नीचे टीले, जंगल में। नगरी के बाहर साधु ने इस आम की स्थापना कर दी। सन् 1941 में पं. रामचन्द्र जी भी लाहौर से मठ में आ गए। टीलों को समतल किया गया, मठ के पास के टीलों से भी मिट्टी खोद-खोदकर ढो-ढोकर मठ का निचली भूमि में डालकर उसे ठीक किया गया। इस कार्य के लिए श्रमिकों की सेवाएं नहीं ली गईं। यह सब कार्य स्वयं मठबासियों ने किया। आर्य जगत् के पूजनीय नेता व तपस्वी महात्मा, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी भी कस्सी चलाते रहे। पं. रामचन्द्र जी ने मठ में कुटिया के पीछे वाले आमों के बाग वाले टीलों से मिट्टी के भट्ठल भर-भर के ढोये। मिट्टी ढोते समय पं. रामचन्द्र जी की फुर्ती व उत्साह देखते ही बनता था। वे भाग-भाग कर भट्ठल ढोते थे। मठ के निर्माण में गुरु और शिष्य (श्री स्वामी जी एवं पं. रामचन्द्र जी) दोनों ने खूब पसीना बहाया है। उन दिनों मठ में प्रातराश की व्यवस्था नहीं होती थी और दोपहर का भोजन भिक्षा का आता था। ऐसे तप की आज के समय में तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मठ में औषधालय खोला गया। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज स्वयं एक असाधारण योग्यता के वैद्य-हकीम थे। आपने सुनसुनाकर नहीं प्रत्युत गुरुमुख से आयुर्वेद व यूनानी ग्रन्थों का वर्षों तक अध्ययन किया था। उनके पास तिब्ब व आयुर्वेद के सभी प्रामाणिक ग्रन्थ थे। पं. रामचन्द्र जी की वैद्यक की शिक्षा की बहुत योग्य वैद्यों के पास व्यवस्था की। स्वामी जी समझते थे कि साधु को वैद्यक का ज्ञान हो तो परोपकार व धर्म प्रचार का बड़ा काम हो सकता है। मठ के औषधालय में पं. रामचन्द्र जी प्रातः 8 बजे से बारह बजे तक रोगियों की सेवा करते। भोजन के पश्चात् मध्याहन्तर में स्वयं ही औषधियों का निर्माण करते तथा मठ के अन्य सभी कार्यों में भी गुरुजी का सहयोग करते। पण्डित जी को कितना कार्य करना पड़ता था, इसका अनुमान हम श्री महाशय कृष्ण जी के एक लेख के इन

शब्दों से लगा सकते हैं- "रोगी भी थोड़े नहीं होते। 1944:45 के सत्र में 36000 (छत्तीस हजार) के लगभग रोगी आए थे। रोगी पास से ही नहीं, दूर-दूर से आते हैं।"

अपनी औषधियों की शुद्धता के लिए दयानन्द मठ फार्मेसी की आज इतनी साख है कि इसे देखकर आर्य मात्र को बड़ा अभियान होता है।

मठ की गोशाला स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की देन है। यहाँ की गऊएँ कई बार पशु मेले में पुरस्कृत हो चुकी हैं। गोपालन और गोसेवा स्वामी जी के जीवन का अभिन्न अंग रहा। मठ के किसी भी कार्य के लिए स्वामी जी ने सरकारी अनुदान नहीं लिया। एक बार डिप्टी कमिश्नर (जिलाधिकारी) ने 5000/- (पांच हजार रुपये) औषधालय के लिए भेज दिये। स्वामी जी ने लौटा दिये। डी.सी. ने कहा कि लोग बोगस संस्थाओं के नाम पर सरकार से सहायता लेते रहते हैं काम कुछ नहीं होता, फिर भी कई संस्थाएँ झूठी रिपोर्ट देकर धन प्राप्त करना चाहती हैं और मठ द्वारा अनेक कार्य हो रहे हैं, फिर भी आप देने पर भी नहीं लेते।

ऐसे ही एक बार शिक्षा अधिकारी ने अनुदान का एक फार्म स्वामी जी के सामने रख दिया और कहा हस्ताक्षर कर दीजिए। स्वामी जी ने मठ के विद्यालय के लिए अनुदान लेने से मना कर दिया। उस अधकारी ने कहा, "स्वामी जी! देख लें बिन मांगे चलकर कोई फिर अनुदान देने नहीं आवेगा। ऐसा और कोई अधिकारी नहीं मिलेगा।" वीतराग स्वामी सर्वानन्द जी बोले, "और इस प्रकार धन को ठुकराने वाला भी आपको नहीं मिलेगा।" स्वामी जी के सामने गुरुदेव स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के ये वचन थे, "हम किसी का दिया नहीं खाते। हम किसी का काम नहीं करते। हम परमेश्वर का काम करते हैं और उसी का दिया खाते हैं।" ऐसे त्यागी तपस्वी आदर्श आर्य संन्यासियों के द्वारा दयानन्द मठ का निर्माण हुआ है। कालान्तर में दीनानगर के अतिरिक्त दयानन्द मठ की स्थापना घण्डरा, चम्बा, रोहतक जैसे नगरों में हुई।

दीनानगर मठ ने स्वामी स्वतंत्रानन्द-काल में भी आर्यसमाज को अनेक तपस्वी, त्यागी, विद्वान् दिये। आर्य जगत् के प्रतिष्ठित विद्वानों एवं आर्य नेताओं का मठ के साथ बहुत लगाव-जुड़ाव रहा। स्वामी वेदानन्द जी (दयानन्द तीर्थ), इतिहास केसरी पं. निरंजन देव जी, शास्त्रार्थ महारथी श्री पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, मठ की स्थापना से पूर्व ही दीनानगर आकर जो शास्त्रार्थ-समर में विजेता बन चुके थे, वे श्री पं. शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् श्री पं. प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति, वैदिक सिद्धान्तों के सूक्ष्म ज्ञाता श्री पं. जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री, स्वामी ओमानन्द जी महाराज (झज्जर), श्री पं. शिव कुमार जी शास्त्री, महात्मा नारायण स्वाम जी, श्री पं. मुनीश्वर देव जी, पूज्य स्वामी भूमानन्द जी, स्वामी सगुणानन्द जी, श्री पं. मधुर शर्मा, वैद्य सांईदास जी, चौ. रामसिंह जी, स्वामी सुव्रतानन्द जी आदि जीवन भर मठ से जुड़े रहे। श्री पं. रुचिराम जी और श्री पं. मेधातिथि जी मठ से जुड़े हुए ऐसे रत्न थे, जिनकी सेवाएं सरदार पटेल से लेकर श्रीमती इन्दिा गांधी तक के काल में भारत सरकार भी लेती रही। मठ की स्थापना से लेकर अब तक इतने संन्यासियों, वानप्रस्थियों, विद्वानों का सम्बन्ध मठ के साथ बना रहा कि उनकी सूची बहुत लम्बी है। मठ के पुराने शुभचिन्तकों में प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ऐसे विद्वान् है जो स्वयं तो जीवन भर मठ से जुड़े ही रहे, साथ-साथ अन्य आर्यजनों को भी मठ से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे। वे हृदय से मठ के हित-चिन्तक हैं। मठ के संस्थापक स्वामी स्वतंत्रानन्द जी एवं बाद में स्वामी सर्वानन्द जी

महाराज का भरपूर स्नेह उन्हें मिला तथा साथ ही निस्पृह बने रहने की भावना।

स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के समय में आर्थिक दृष्टि से ज़रूरतमन्द आर्य विद्वानों को मठ की ओर से सहायता दिया जाना अकेला ऐसा कार्य है जो मठ को अन्य आर्य-संस्थाओं से अलग स्थान प्रदान करता है।

इस कार्य का स्वामी जी कहीं उल्लेख भी नहीं करते थे। यही उनकी महानता थी। मठ में पधारने वाले आगन्तुकों, विद्वानों, संन्यासियों के उत्तम आतिथ्य की परम्परा का भी बहुत अच्छे ढंग से निर्वाह हो रहा है। मठ के वर्तमान अध्यक्ष और उनके सहयोगी इन सब बातों के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

इस समय दयानन्द मठ के प्रमुख श्री स्वामी सदानन्द जी महाराज हैं। सुयोग से उनके पास श्री बलविन्द्र जी शास्त्री, श्री दिनेश शास्त्री, श्री रमेश शास्त्री और "प्रभु जी" के नाम से पहचाने जाने वाले शास्त्री जी जैसे उत्साही युवाओं की टीम है। स्वामी जी स्वयं भी मठ के कार्यों के लिए दिन-भर दौड़-धूप करने और रोगियों की सेवा करने में लेशमात्र भी थकान नहीं मानते। मठ के संस्थापक बड़े स्वामी जी और उनके सुयोग्य शिष्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज मठ की प्रतिष्ठा और प्रगति की दृष्टि से इतनी लम्बी लकीर खींच गये हैं कि उन ऊंचाइयों को बनाये रखने के लिए ही वर्तमान पदाधिकारों को भागीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा। आर्यजनों की हार्दिक शुभकामनाँ उनके साथ हैं। आर्य समाज के क्षेत्र में दयानन्द मठ दीनानगर जैसी उत्तम संस्थाएँ कम ही हैं। परोपकारिणी सभा अजमेर, श्रीमद्दयानन्द आर्ष कन्या गुरुकुल चोटीपुरा (जे.पी. नगर) मुरादाबाद को इस दृष्टि से स्मरण कर सकते हैं। प्रभु कृपा और सम्बद्ध आर्यजनों के सत्प्रयास से मठ की यह शोभन स्थिति बनी रहे। यही कामना है।

□□

उपदेश दो कर्म से

त्यागो क्षुद्र मानसिकताएँ -

1. अब उपदेश सफल नहीं होंगे, आत्म नियंत्रण करना होगा।
   कहने से पहले उर धारो, विधाएँ, उज्ज्वल शिक्षाएँ- त्यागो क्षुद्र मानसिकताएँ।

2. कथनी करनी के पीछे हो, सच्चरित्र ही सदुपदेश है।
   मात्र एक वाणी अपूर्ण है मनसा कर्मण भी अपनाएँ- त्यागो क्षुद्र मानसिकताएँ।

3. जिनसे तुम कुछ लाभ पा सके, आनन्दित आत्मा प्रसन्न मन।
   पावन बुद्धि प्रेम जन-जन का कैसे मिला उसे समझाएँ- त्यागो क्षुद्र मानसिकताएँ।

4. औषधि अ परीक्षित देगा तो वैद्य सदा धोखा पाएगा।
   अरे वैद्य! पहले परखो तो, तब देना ये अभिलाषाएँ- त्यागो क्षुद्र मानसिकताएँ।

आर्य समाज : एक समग्र चिन्तन
(नियमों के आलोक में)
रामनिवास 'गुण ग्राहक'

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस सृष्टि को बने लगभग दो अरब वर्ष हो चुके हैं। परिपुष्ट एवं प्रमाणित मान्यता के अनुसार वेद उस परम् पिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही चार ऋषियों के माध्यम से मानव जाति को प्रदान किए हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के वेदोत्पत्ति प्रकरण में लिखते हैं- 'वेदानात्मुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यातीतानि? अत्रोच्यते एको वृन्दः षण्णवति कोट्य अष्टोलक्षाणि द्विपञ्चाशत् सहस्त्राणि नव शतानि षट् सप्ततिश्च।' अर्थात् वेदों की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए? उत्तर में कहा- एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छियत्तर (1,96,08,52,976) वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ध्यान रहे महर्षि ने उक्त ग्रन्थ विक्रमी संवत् 1933 में लिखा था। अब संवत् 2069 चल रहा है और तब से अब तक व्यतीत काल को जोड़कर ये संख्या 1,96,08,53,105 हो जाती है। इस भारतीय काल गणना के प्रति हमारे महापुरुषों की बड़ी श्रद्धा रही है। प्रजा वत्सलता व न्याय-निष्ठा के लिए विख्यात महाराज विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित विक्रमी संवत् सृषि संवत का ही अनुकरण करता है। वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जी महाराज ने लोक कल्याणकारी संस्था 'आर्य समाज; की स्थापना उस सृष्टि संवत के प्रथम दिन की थी। इस प्रकार अपनी संस्कृति के महत्व को समझने वाले महापुरुषों ने इस सृष्टि संवत की महत्ता को समय-समय पर तरोताजा करने में अपना योगदान दिया है।

जहा तक आर्य समाज के निर्माण की बात है तो उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों को बड़ी गहराई से देखने-परखने के बाद लोगों के विशेष आग्रह पर महर्षि ने इसकी स्थापना की थी। ऋषि का अर्थ साक्षात् दर्शन करने वाला होता है, महर्षि दयानन्द जी ने 18 घण्टे की अचल समाधि के अभ्यास से उस परमेश्वर को साक्षात् प्राप्त किया था। उस परम् तत्व को प्राप्त करके उसी की पावन प्रेरणा की पूर्ति के लिए महर्षि ने अपने भक्तों का आग्रह स्वीकार किया था। महर्षि की दूर दृष्टि का चमत्कार उनके द्वारा निर्धारित आर्य समाज के दस नियमों में बड़ी प्रखरता से चमकता है। इन नियमों पर एक नए ढंग से विचार करके कुछ ऐसे नए तथ्य पाएंगे जो तत्कालीन परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराने के साथ महर्षि के विराट चिन्तन एवं महान ध्येय और उसे प्राप्त करने के साधन, उपायों का सटीक ज्ञान कराते हैं। आत्म-कल्याण और जन-कल्याण के मार्ग पर सच्चे हृदय से चलने की इच्छा रखने वाले हर सज्जन पुरुष को इन नियमों पर खुले मस्तिष्क से विचार करना चाहिए। नियमों का क्रम कुछ इस प्रकार है।

तत्कालीन परिस्थितियों का सामान्य ज्ञान रखने वाले जानते हैं कि उस समय धर्म और विज्ञान के सिद्धान्त भिन्न ही नहीं एक दूसरे के विरोधी थे। धर्म के ठेकेदार जहाँ ईश्वर के सम्बन्ध में बड़ी रोचक व हास्यास्पद धारणाओं को लेकर अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग गाते फिरते थे तो वहीं तर्क-विज्ञान वादी उनकी बोलती बन्द करके अपनी विजय दुन्दुभि

बजाते हुए घोषणा करते थे कि ईश्वर मर गया। लेकिन जैसे धर्मध्वजियों के मान लेने से ईश्वर श्रीरसागर, गोलोक में नहीं सिमट सकता अथवा चौथे, सातवें आसमान पर नहीं भाग सकता, ठीक इसी प्रकार विज्ञान वादियों के मारने से वह मर भी नहीं सकता। इस ऐसी अटकलों का समुचित समाधान करने के लिए ऋषिवर ने आर्य समाज का पहला नियम बनाया- 'सब सत्य विद्या (धर्म) और जो पदार्थ विद्या (विज्ञान) से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।' इस नियम के द्वारा महर्षि दयानन्द ने धर्म और विज्ञान की एक दूसरे पर तनी भृकुटियों को एक नई दिशा देते हुए कहा कि इन दोनों का मूल ईश्वर ही है। धर्म के बारे में तो सभी ऐसा कहते हैं, लेकिन वैशेषिक दर्शन सूत्र- 'धर्म विशेष प्रसूताद... पदार्थाना तत्व ज्ञानान्निः श्रेयस सिद्ध' से एकदम स्पष्ट है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय आदि के तत्व ज्ञान से मुक्ति (ईश्वर-प्राप्ति) होती है।

इतना समन्वय करने के बाद भी एक प्रश्न तो रह ही गया कि वह ईश्वर है कैसा? इसके लिए दूसरा नियम बनाया- 'ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।' आर्य समाज संसार की अकेली ऐसी विलक्षण संस्था है, जिसके नियमों में ईश्वर का वर्णन किया गया है। इसके पूर्व और पश्चात् कितने ही धार्मिक संगठन बने, कोई भी ईश्वर के बारे में नियमों में ऐसा उल्लेख न कर सका। ये तो ऋषि-प्रज्ञा का चमत्कार है कि ईश्वर के नाम और स्वरूप पर झगड़ने वालों को ईश्वर का सच्चा स्वरूप बताया गया। कहते हैं जादू वह है जो सिर चढ़कर बोले- महर्षि के बाद इस्लमाम जैसे धर्म के व्याख्याकारों ने ऋषि के ईश्वर के सर्वव्यापक एवं निराकार आदि गुणों को खुले हृदय से स्वीकारा। हमारे पुराण पन्थी बन्धु जो मूढ़ता में फँसकर हिन्दू कहलाने में लज्जा के स्थान पर गर्व का अनुभव करते हैं, जो बहुत भली भांति जानते हैं कि हमारे किसी भी धर्म व इतिहास ग्रन्थ में 'हिन्दू' शब्द तक नहीं है, सर्वत्र हमारे लिए 'आर्य' सम्बोधन है फिर भी दुराग्रह और दुर्भाग्य के कारण इनके हृदय 'आर्य' शब्द के प्रति घृणा भरी हुई है। कुछ भी सही ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में महर्षि के सिद्धान्तों को इन्होंने भी लम्बे शास्त्रार्थों के बाद स्वीकार कर ही लिया। मूर्ति पूजा तो कुछ अज्ञानी आलसियों की उदर पूर्ति का व्यवसाय है, धर्म ध्वजियों की मजबूरी है। जहाँ तक विज्ञानवादियों का प्रश्न है, मेरे पास दर्जनों प्रमाण हैं कि उच्च कोटि के वैज्ञानिक ईश्वर की सत्ता और उसके महर्षि सम्मत स्वरूप में पूर्ण विश्वास करते हैं। डॉ. जार्ज अर्ल डेविस (वर्णक्रम, विकिरण ज्यामिति और भौतिकी प्रकाशिकी के विशेषज्ञ) अपने लेख- 'वैज्ञानिक खोजों का संकेत ईश्वर की ओर' में लिखते हैं- मैं ऐसे परमात्मा के बारे में विचार करना पसन्द करता हूँ जिसने इस चराचर जगत को उत्पन्न किया है किन्तु स्वयं जगत नहीं है।.... वह इस जगत पर शासन करता है और स्वयं इसमें अनुप्रविष्ट है''। ईश्वर का स्वरूप प्रकट करने के बाद ईश्वर के बारे में अधिक व्यापक एवं विज्ञान सम्मत जानकारी प्राप्त करने के लिए तीसरा नियम- 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है'' बनाया। वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत हैं, यह कहना और प्रमाणित

करना ऋषि का युगजीवी चमत्कार और उपकार है। कहना न होगा कि ऋषि से पूर्व जो पाश्चात्य जगत् वेदों के गडरियों के गीत कहता था, ऋषि के वेद-भाष्य को पढ़कर वेद में उनको विज्ञान् के गूढ़ और गम्भीर रहस्य दिखने लगे। जानकार लोग जानते हैं कि लगभग 150-200 वर्ष पूर्व तक वेद का नाम लेकर अनेक प्रकार के अत्याचार और अनर्थ होते थे। यज्ञों में पशु बलि दी जाती थी, 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्- के पीछे 'इति श्रुते' की पूँछ लगाई गई। वेद के अर्थ के अनर्थ किए गए, इसलिए महर्षि को चौथा नियम सत्य-शीलता के आग्रह में लिखना पड़ा- 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए'। एक लम्बे काल से मानवता ज्ञान और कर्म को एकाकार रूप में लेकर नहीं चल पा रही। शंकराचार्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान् भी एक भयंकर भूल कर बैठे कि ज्ञान और कर्म में अचल पहाड़ जैसा भेद है। हम आज तक यह नहीं सोच सके कि ज्ञान होता ही कर्म के लिए है। क्या हम ज्ञान युक्त कर्म न करके मूढ़ कर्मों से अपना या किसी का भला कर सकते हैं? कदापि नहीं, हमें कैसे कर्म करने चाहिए, सत्य को ग्रहण कैसे करना चाहिए ये पाँचवा नियम बताता है- 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।' आर्य समाज के ये पांच नियम इस समाज की सैद्धान्तिक विचारधारा को प्रकट करते हैं इन पाँच सिद्धान्तों से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके मनुष्य आर्य समाज के सामाजिक अभियान में अपना सम्पूर्ण योगदान करें। आगे के पाँच नियम सामाजिक व्यवहार के दिशा निर्देशक हैं, निष्ठावान आर्यजनों की सामाजिक सोच को प्रकट करते हैं। आज आर्य समाजी बन्धु भी कुछ भटक गए हैं, उन्हें गहराई से ऋषि भावना को समझना और तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। ये नियम इतने सरल और स्पष्ट हैं कि उने साथ कुछ कहना उचित प्रतीत नहीं होता, मनीषी पाठक स्वयं मनन करेंगे ऐसी आशा है।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।'

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

❑❑

विदेशी गायों के दूध में मौत

विश्व प्रसिद्ध अमेरिकन डॉ. थॉमस कोवन ने अपनी पुस्तक डेविल इन द हास्टन फिजन काऊ मिल्क में लि,सस है कि इनके दूध में बीटाकैसीलीन ए-वन पाया जाता है। जो हृदय, फेफड़े, त्वचा, कैंसर व अल्सर रोग करता है व बच्चों के लिए बहुत हानिकारक है जबकि भारतीय स्वदेशी नस्ल की गाय का दूध कैंसर, हृदय, फेफड़े एवं अल्सर रोग नष्ट करता है और बच्चों की शीघ्र प्रगति करे सब रोगों से मुक्त करता है।

होली का शास्त्रीय स्वरूप

(रामनिवास 'गुणग्राहक')

भारतीय जन जीवन में रस घोलने वाले पर्वों व त्यौहारों की बड़ी सुन्दर श्रृंखला है। ये पर्व हमारे जीवन में रस ही नहीं घोलते हमारे आत्म-कल्याण का द्वार भी खोलते हैं। इनमें मात्र हर्षोल्लास व आमोद प्रमोद ही नहीं होता बल्कि समाज में धार्मिकता, भाईचारा तथा परस्पर सहयोग की भावनाएँ भी निहित होती हैं। हमारे समाज की रीति नीति निर्धारण करने वालों ने बड़ी दूरदर्शिता से इनका प्रचलन किया था। इन पर्वों का सम्बन्ध प्रायः हम किन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं से जोड़ लेते हैं मगर सच ये है कि ये हमारे देश के प्रमुख चार पर्व जिनमें रक्षाबन्धन, दशहरा, दिवाली व होली आते हैं, ये तो किसी घटना विशेष पर निर्भर नहीं करते। इस वर्ष के अनितम पर्व होली जिसे शास्त्रीय भाषा में '-वासन्ती नव संस्येष्टि' कहते हैं। जिसका अर्थ है वसन्त ऋतु में प्राप्त नए अन्न द्वारा यज्ञ अर्थात् देव पूजा।

हमारी भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं जीवन शैली में दान, परोपकार, सेवा सहयोग की भावना कूट-कूट कर भरी है। हमारे ऋषि मुनियों ने एवं समस्त शास्त्रों ने उदारता एवं परदुःखकातरती को बड़ा महत्व दिया है। इसी क्रम में हमारे पर्वों की परम्परा भी हमें इन्हीं जीवन तत्वों से प्रेरित करती है। हमारे सभी पर्व ऋतुपरिवर्तन की तैयारी, वेदादि सत्शास्त्रों के पठन-पाठन या नवागत फसल को प्रथम देवों को समर्पित करने के उदात्त भावों को लेकर मनाये जाते हैं। शरद् ऋतु के नवान्न ज्वार, बाजरी, तिल आदि को हवन द्वारा देवों को समर्पित करने का पर्व दीपावली 'शारदीय नव सस्येष्टि' कहलाता है। यह वर्षा ऋतु की समाप्ति व शीत के आगमन की तैयारी का पर्व भी कहलाता है।

रही बात होली की, तो इसका तो नाम करण ही इसके महत्व को प्रकट कर देता हे। कहीं कहीं इस पर्व को 'होलिकात्व भी' कहते हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय मत यह है कि होलक उस अन्न को कहा जाता है, जो अधपका हुआ व हल्की अग्नि में भूना हुआ हो।' अर्द्ध पक्वशमी धान्यैस्तृणभ्रष्टै श्च होलकः'। (भाव प्रकाश) ऐसा ही वर्णन' शब्द कल्प द्रुम कोश' में भी आता है। इस होलक से ही होलिका या होली शब्द का सृजन हुआ है। आज जो होली मनाई जाती है वह होलक का अति विकृत स्वरूप है। आज जब हमारी सभी प्रथा परम्पराएं विकृत प्रदूषित हो चुकी है तो होली ही अछूती कैसे रह जाती। प्राचीन काल में ग्राम या नगर के सभी व्यक्ति समस्त वैर भाव व मतभेदों को भुलाकर सामूहिक यज्ञ करते थे। अपनी नवागत फसल के अधपके अन्न को इस यज्ञाग्नि में समर्पित करके सभी इसे मिल बांटकर खाते थे। अग्नि को समर्पित पदार्थ सभी पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि सभी देवों को उसी प्रकार मिल जाता है जैसे मुँह में डाला हुआ भोजन सारे शरीर को यथावत् पहुँचता है। अग्नि को देवों का मुख कहा जाता है। 'अग्निर्वै देवानामुखं' प्रजापति ने अग्नि को देवों का मुख नियत किया है।

इस प्रकार हमारा यह पर्व हमें देवपूजा के साथ-साथ सामाजिक सौहार्द की प्रेरणा करता है। यह वर्ष का अन्तिम पर्व है। इस पर्व पर हम परस्पर के सभी मन मुटाव व ऊंच नीच को मिटाकर परस्पर प्रीतिपूर्वक गले मिलते हैं। संसार के कई देशों में ऐसे नई फसल के नवान्न के आने के अवसर पर इसी प्रकार हर्षोल्लास

के साथ पर्व मनाये जाते हैं। रूस व जापान में कृषक वर्ग अपने नवान्न को इसी प्रकार अपने मित्र वर्ग व सम्बन्धियों के साथ मिलकर बनाते खाते हैं। इंग्लैण्ड में 'पोल' का उत्सव इसी प्रकार के उत्सव हैं। मानव की स्वाभाविक सुकोमल भावनाएँ देश, जाति, काल आदि के बन्धनों में नहीं बाँधी जा सकतीं। आज दुर्भाग्य ये है कि मानव सभ्यता व विकास के नाम पर मानवता का गला घोंटने में गौरव मानने लग गया है। शहरों व महानगरों का मशीन बना मानव इस कोमल अनुभूतियों से बल्किुल कट चुका है। उसके लिए वसन्त ऋतु का सृष्टि श्रृंगार, कोयल की कूक, नदियों की कल-कल, झरनों का संगीत, गिरिकन्दराओं का सौन्दर्य, प्रकृति नटी की अद्भुत छटा कवियों की कल्पना से अधिक कुछ भी नहीं। यही कारण है कि मनुष्य सौ प्रीति वचनों व प्रार्थनाओं को तो पचा सकता है मगर एक कटुवचन उसके अन्तर्मन में असन्तुलन पैदा कर देता है।

मेरे सुहृदय आत्म बन्धुओं! अगर आप अपने जीवन में सुख शान्ति व मधुरता का संचार चाहते हो तो इन सद्भावनाओं व प्रीति, स्नेह, सहृदयता, करुणा, सेवा, दया व दान आदि को हृदय में स्थान दो।

हमारे अन्दर कटुता भरी होगी, ईर्ष्या, दोष, क्रोधानल से हृदय तृप्त होगा तो मधुरता के सपने भी नहीं आएंगे। जिस कुएं का स्रोत कड़वा हो उसे ऊपर से चीनी डालकर मीठा नहीं बनाया जा सकता। अगर हमारे हृदय में कुटिलता, क्रूरता व संकीर्णता है तो किसी बाहरी व्यक्ति का सद्व्यवहार हमें शान्ति नहीं दे सकता तो आओ इस प्रीति पर्व को पारस्परिक सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ मनाकर राष्ट्र व समाज को सन्तुलित बनाने में सहयोग दें। पर्वों की पावनता व महत्व पर कवि अयोध्यासिंह 'उपाध्याय' लिखते हैं-

'क्या हुआ लिक्खे पढ़े जो चित्त में समता न हो।'
निज पर्व त्यौहार की और जाति की, ममता न हो।।
जाति जो नहीं पर्व उत्सव प्रेम धारा में बही।
वह रही तो नाम को संसार में जीती रह।।

नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए लिखा है-

'ऐ नई पौधों करो मत जाति हित में आतुरी।
फूँक दो अनुराग निजता धुन भरी व बांसुरी
प्यार से मिल गोद में निज उत्सवों को लो लिटा
जाति कब जीवित रही निज कीर्ति चिन्हों को मिटा।।

❑❑

'गुणग्राहक' के हृदयोद्गार

मेरा तो ऐसे व्यक्ति से कोई भी सम्बन्ध नहीं जो-
नीति न्याय के शील वस्त्र को, जर्जर करने हित उद्यत हो।।
मैं सिद्धान्त प्रिय व्यक्ति हूँ, मानवता का सच्चा सेवक।
मर्यादा का सतर्क प्रहरी सश्रम धर्म नाव का खेवक।।
विश्व प्रेम बन्धुत्व ध्येय है, वैदिक युग साकार स्वप्न हो।
सार्वभौम सिद्धान्त हमारे विश्व भला क्यों कर कृतघ्न हो।।
भाषा एक जाति मानवता, फिर आगे ये - बन्धन कैसे?
सबका सुख-दुख निज सम ही है, बन्धु सहो-क्यों क्रन्दन ऐसे?

ईश्वर सिद्धि सम्बन्धी मन्तव्य और मैं

(अभिमन्यु कुमार खुल्लर, लश्कर, ग्वालियर)

अमेरिका प्रवास में एक आत्मीय ने कहा - आर्यसमाज और ईश्वर को अपने पास ही रखिए। अंग्रेजी की एक पुस्तक देते हुए कहा - इसे पढ़िए। आपको मालूम हो जाएगा कि मनुष्य का मस्तिष्क किस प्रकार काम करता है। एक ही बात दोहराते रहिए। मस्तिष्क में उस बात की ध्वनि-प्रतिध्वनि होती रहेगी। यदि ओ३म् का बारम्बार उच्चारण करते रहेंगे तो आपको लगेगा कि आप और ओ३म् एकाकार हो गए हैं। तत्काल एक विचार मस्तिष्क में कौंध गया कि महर्षि भी प्रणव का एक हजार बार जाप करने का आदेश करते थे। पुस्तक पढ़ने की हिम्मत ही नहीं हुई इस भय से कि कहीं ईश्वर विश्वास की चूलें ही न हिल जायें (यह लेखक की सैद्धान्तिक व मानसिक दुर्बलता है-'गुणग्राहक')। ईश्वर पर विश्वास का आधार क्या है? जब हम उसे निराकार, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक स्वीकार कर चुके हैं तो संकट पड़ने पर हमारा उस पर से विश्वास क्यों हिल जाता है? इसके अतिरिक्त यह विचार भी जड़ पकड़ रहा था कि ईश्वर को मानने वाले क्या उसे जान-बूझकर ही मानते हैं अथवा विरासत में मिले संस्कारों के कारण मानते हैं और पूजते हैं। ये प्रश्न मन-मस्तिष्क को उद्वेलित करने लगे। संकट तो गहरा हो चुका था। चिन्ता तो लग चुकी थी।

ईश्वर सिद्धि विषयक साहित्य पढ़ने लगा। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय का ग्रन्थ 'आस्तिकवाद' स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का Man and his Religion महर्षि के पूना प्रवचन (प्रथम प्रवचन ईश्वर सिद्धि पर दिया गया है।) शास्त्रार्थ महारथी द्वय पं. रामचन्द्र देहलवी और पं. गणपति शर्मा के शास्त्रार्थ, सत्यार्थ प्रकाश का सप्तम् समुल्लास। सप्तम् समुल्लास का एक ही प्रश्नोत्तर मेरी समस्या के अनुरूप लगा। सुलभ सन्दर्भ के लिए यथावत् यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।

प्रश्न—आप ईश्वर, ईश्वर कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर— सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न— ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते।

उत्तर—गौतम महर्षि कृत न्यायदर्शन के सूत्र के अनुसार जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिव्हा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख-दुःख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो।

अब विचारना चाहिए कि, इन्द्रियों और मन से "गुणों" का प्रत्यक्ष होता है 'गुणी' का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गंध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथ्वी है, उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस "प्रत्यक्ष सृष्टि" में रचना विशेषादि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।

और जब आत्मा और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता व चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर के बुरे

काम करने में, भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोसाह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं परमात्मा की ओर से है।

क्या सटीक तराजू दी है महर्षि ने। क्या इसको कोई झुठला सकता है?

पूना में दिया गया प्रथम प्रवचन ईश्वर सिद्धि विषयक था। इसमें भी महर्षि ने सृष्टि रचना का उदाहरण देकर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया।

.....ईश्वर = परम पुरुष = सनातन ब्रह्म सब पदार्थों का बीज है। रचना रूपी कार्य दिखता है। इस पर से अनुमान होता है कि, इस सृष्टि को रचने वाला अवश्य कोई है। पंचभूतों की सृष्टि आप ही आप रची हुई नहीं है क्योंकि घर का सामान विद्यमान होने से ही घर नहीं बन जाता, यह हमारा देखा हुआ अनुभव सर्वत्र है। साथ ही साथ पंचभूतों का मिश्रण नियमित परिमाण से विशिष्ट कार्य उत्पन्न होने की ही सुगमता के लिए कभी भी आप स्वयं घटित नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि सृष्टि की व्यवस्था जो हम देखते हैं उसका उत्पादक और नियन्ता ऐसा कोई 'श्रेष्ठ पुरुष' अवश्य होना चाहिए।.....

प्रत्यक्ष रीति से 'गुण' का ज्ञान होता है। गुण का अधिकरण जो 'गुणी' द्रव्य है, उसका ज्ञान प्रत्यक्ष रीति से नहीं होता। इसी प्रकार ईश्वर सम्बन्धी गुण का ज्ञान चेतन और अचेतन सृष्टि द्वारा प्रत्यक्ष होता है। इसी पर से ईश्वर संबंधी 'गुण' का अधिकरण जो ईश्वर है, उसका ज्ञान होता है, ऐसा समझना चाहिए। इसे स्पष्ट करने के लिए ऋग्वेद का मंत्र बोला –

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ ''आस्तिकवाद'' में ईश्वर सिद्धि के लिए विश्व के समस्त मानव समुदाय में 'धर्मभाव' या 'आस्तिकता' अर्थात् अपने से उच्चतर शक्ति में विश्वास निरूपित करते हैं। उपाध्याय जी के सुपुत्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एवं आनन्द स्वामी जी महाराज ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानव शरीर रचना की विशद व्याख्या कर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। शास्त्रार्थ महारथी द्वय पंडित रामचन्द्र देहलवी एवं पं. गणपति शर्मा सृष्टि रचना का उदाहरण देकर ईश्वर के अस्तित्व को समझाते हैं।

भौतिकी के वैज्ञानिक लगभग 50 वर्ष से ब्रह्माण्ड की संरचना के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हैं। सर्न वेधशाला में चल रहे प्रयोगों से एक कारक परमाणु का पता चला है जो हवा में तैरते हुए परमाणुओं को घनत्व (ठोस रूप) प्रदान करता है। वैज्ञानिकों को मानना है कि 'बिग बैंग' के बाद सभी परमाणु उड़ते रहे होंगे। इसी सर्जक परमाणु ने उनमें प्रवेश कर पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि ग्रह-नक्षत्रों का निर्माण किया होगा। अतः यही परमाणु कण जिसे वह 'गॉड पार्टिकल' कहते हैं, विधाता है। सर्वप्रथम ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स ने इस तथ्य की घोषणा 1965 में की। भारतीय वैज्ञानिक केशवचन्द्र बोस ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इसलिए इसे हिग्स-बोसन सिद्धान्त कहते हैं।

इस दार्शनिक विवेचन के परिपेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि, ईश्वरके अस्तित्व के संबंध में महर्षि दयानन्द के समक्ष कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई थी। उनके

समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि मूर्ति ईश्वर है अथवा मूर्ति में ईश्वर है या नहीं। यह प्रश्न उठा विद्वत्वर पं. गुरूदत्त विद्यार्थी एवं मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के समक्ष। यह कहना यथार्थ नहीं कि महर्षि के प्रयाण के दृश्य ने नास्तिक गुरुदत्त को आस्तिक बना दिया। 19 वर्षीय पं. गुरूदत्त विद्यार्थी आर्यसमाज लाहौर के सभासद थे और आर्य समाज लाहौर के उपप्रधान लाला जीवनदास के साथ महर्षि की दारुण रुग्णावस्था का समाचार पाकर अजमेर भेजे गए थे। क्या उस युग में एक नास्तिक आर्यसमाज का सभासद हो सकता था? तथ्य यह है कि उस समय उनकी मानसिक स्थिति 'संशयवादी' की थी। संशयवादी अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व है अथवा नहीं, इसका उन्हें निश्चय नहीं हुआ था। रही बात मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्द) की तो उनका महर्षि दयानन्द से बरेलीवाला वार्तालाप स्मरण कीजिये। मुंशीराम ने कहा था कि आपने (स्वामी दयानन्द) मुझे तर्कों से तो पराहित कर दिया लेकिन ईश्वर पर विश्वास नहीं दिलाया। महर्षि ने उत्तर दिया- तुमने प्रश्न पूछे मैंने तुम्हें उत्तर दिये। मैंने कब कहा था कि मैं तुम्हें ईश्वर पर विश्वास दिला दूंगा। ईश्वर पर विश्वास तो तुम्हें तब होगा जब तुम्हारे ऊपर ईश्वर की कृपा होगी। महर्षि के इस कथन से स्फटिक की तरह स्पष्ट है कि ईश्वर पर विश्वास के लिए ईश्वर की कृपा की अत्यन्त आवश्यकता है। क्या नासमझ को या ईश्वर को जाने बिना मानने वाले पर ईश्वर की कृपा हो सकती है? यदि इस तथ्य को भी स्वीकार कर लें कि ईश्वर की कृपा हो सकती है? यदि इस तथ्य को भी स्वीकार कर लें कि ईश्वर अपनी कृपा दिखाने में भेदभाव नहीं करता तो भी यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट रहेगा कि वे (नासमझ, जाने बिना मानने वाले) उस कृपा को समझ ही नहीं पायेंगे। और न उससे आत्मोन्नति के मार्ग में लाभान्वित हो सकेंगे।

काफी लम्बे समय के पश्चात् मुंशीराम पर ईश्वर की कृपा हुई। महर्षि के साथ हुए संवाद के बाद मुंशीराम के हृदय में आस्तिकता की किरणें फूटने लगीं। उनके जीवन में अनेक छोटी-बड़ी ऐसी घटनाएं घटीं कि उनका संशय मूल निर्मूल होकर ईश्वर विश्वास ऐसा बढ़ा कि वे महात्मा मुंशीराम बनकर बाद में श्रद्धा-सिन्धु श्रद्धानन्द बन गए।

रही गुरुदत्त की बात। मिल आदि पाश्चात्य दार्शनिकों के ग्रंथों का अवलोकन करने के पश्चात् उनकी वृत्ति संशयात्मक हो गई थी- ईश्वर है अथवा नहीं है? अजमेर पहुंचने पर महर्षि को मृत्युशैया पर लेटे हुए देखा। रात्रि भर वे डॉ. लक्ष्मणदास के साथ महर्षि की शैया के समीप बैठे रहे। डॉ. लक्ष्मणदास के अनुरोध पर अजमेर के सिविल सर्जन डॉ. न्यूमेन को बुलाया गया। वे महाराज पर रोग के प्रचण्ड आक्रमण किन्तु रोगी की अनन्य, अतिमानवीय सहनशीलता को देखकर स्तम्भित रह गये। उन्हें अतीव आश्चर्य हुआ कि इस भीषण स्थिति में भी कोई रोगी ऐसी दारुण वेदना को असीम धैर्यपूर्वक कैसे सहन कर सकता है?

गुरुदत्त टकटकी बांधे महर्षि के महाप्रयाण को देख रहे हैं। पूरे शरीर में फफोले निकल रहे हैं। गले के अन्दर तक फफोले पड़ गये हैं और बार-बार शौच जा रहे हैं। पेट में भयंकर पीड़ा हो रही है और महर्षि पूर्णतया शांत। न कोई आह, न कोई ऊह। गुरुदत्त के मन में विचार बार-बार कौंध रहा था कि कौन सी अदृश्य शक्ति इस भीषण अवस्था में महर्षि के मन व इन्द्रियों पर अटूट नियंत्रण की शक्ति प्रदान कर रही थी। ऐसा प्रयाण, निष्णात् योगी, ईश्वर के परम विश्वासी का ही हो सकता है। सदैव के लिए ईश्वर के संबंध

में संशय की स्थिति समाप्त हो गई। ईश्वर की सत्ता पर पूर्ण विश्वास हो गया। जान लिया कि ईश्वर क्या है। उपरोक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है ईश्वर पर विश्वास ईश्वर की कृपा से ही संभव है। ईश्वर कृपा किस तरह करता है, यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक हो सकता है।

श्री शिवनारायण उपाध्याय (कोटा) ने इस विषय में एक भिन्न संदर्भ में मुझे लिखा -"ईश्वर पर विश्वास केवल तर्कपूर्ण भाषा में उसकी सिद्धि करने मात्र से नहीं हो जाता। उसके लिए जीवन में घटने वाली आश्चर्यजनक घटनाओं का बड़ा हाथ होता है। मैंने स्वयं जीवन में अनुभव किया है कि किस प्रकार वह हमेशा हमारी सहायता के लिए उपस्थित रहता है। वास्तव में प्रयत्न करके आप उसे नहीं जान सकते।"

प्रारम्भ से लेकर अब तक इस लेख में मैंने ब्रह्म को, ईश्वर को जानने समझने की अपने मन-मस्तिष्क की प्रक्रिया को दर्शाया है। गुणीजन, सुधीजन को यह सब विवरण जाना पहचाना समझा हुआ लगे पर मैं कब उनके लिए लिखता हूँ। मेरा लेखन तो स्वयं मुझ जैसे सामान्य बुद्धिवालों के लिए है जो विद्वानों की दुरूह शब्दावली से कुछ समझ ही नहीं पाते। मुझे इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में से निकलने पर शान्ति मिली है। मेरा मनोबल, आत्मविश्वास बढ़ा है।

पर प्रश्न खड़ा है - ईश्वर को समझने, जानने, मानने वाले का जीवन कैसा होना चाहिए। महर्षि बारम्बार 'दुरितानि परासुव' क्यों कहते हैं। इस पर विचार करने से पूर्व मैं देखता हूँ - ईश्वर को जाना-माना महर्षि दयानन्द ने। उनसे प्रेरणा पाकर जाना-माना पंडित लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी और स्वामी श्रद्धानन्द ने। न केवल इन लोगों की ही काया पलट गई बल्कि जनमानस की भी काया पलटने की सामर्थ्य परमपिता परमात्मा से प्राप्त की। मेरी अल्पमति में स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज इसी श्रेणी में परिगणित किए जा सकते हैं। अन्य अनेक विद्वान् एवं संन्यासी भी इसी श्रेणी की पात्रता रखते होंगे। उनका मूल्यांकन करने की भी योग्यता मुझमें नहीं है।

प्रश्न आज के वैदिक धर्मियों का है जो ईश्वर के इस स्वरूप को जानने व मानने का दावा करते हैं। सम्पूर्ण विश्व में इनकी संख्या लगभग 50-70 लाख होगी। यह विशाल जनसंख्या सम्पूर्ण विश्व का चारित्रिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य बदलने के लिए पर्याप्त है। पर यह जन क्या दावा कर सकते हैं कि भ्रष्टाचार, अनैतिकता, कर्तव्य निर्वहन के प्रति निष्ठा का अभाव उनमें नहीं है? परिवार में एक दूसरे के प्रति प्रेम आदर का भाव है? कन्या भ्रूण हत्या के दोषी नहीं है? पारिवारिक झगड़े और मुकदमेबाजी नहीं है? यदि ये सब बातें हैं तो 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' का नारा लगाना कोरी गप्पबाजी नहीं तो क्या है? यदि सम्पूर्ण अर्थ में 'आर्य' - श्रेष्ठ नहीं बन सकते तो कुछ गुण ही अपना लीजिये। समाज में आप अलग ही दिखेंगे। वे गुण आपको वैशिष्ट्य प्रदान करेंगे। आप श्रद्धा व प्रीति का पात्र बनेंगे। लेकिन हम आज देखते हैं कि इनमें से एक बड़ा वर्ग आर्यसमाज को ही रसातल में पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। यह वर्ग वैदिक धर्मी है ही नहीं। इस वर्ग का प्रवेश आर्यसमाज के नेतृत्व की अदूरदर्शिता का परिणाम है। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज स्थापित किया था अपनी विरासत को सहेजने सम्हालने व वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार को तीव्र गति प्रदान करने के लिए। यह तो हुआ ही नहीं, हम महर्षि को ही घोल कर पी गए।

धर्म-सुधा-सार
जगत का निर्माण

प्रातः काल का समय था, ठंडी ठंडी हवा चल रही थी। पक्षी चहक रहे थे। पेड़ों से फूल पत्तों की भीनी भीनी सुगन्ध आ रही थी। कुटी की शोभा बड़ी रमणीक थी।

स्वामी धर्मानन्द जी प्रातःकाल से ही प्रभु भजन में लग जाते हैं। अनेक भक्त धीरे-धीरे उनके पास जमा हो जाते हैं। प्रार्थना होती है, भजन गाये जाते हैं। फिर स्वामी जी का उपदेश होता है। धीरे धीरे भक्तों की संख्या बढ़ने लगी।

सब लोग मिल गाने लगे -

गुण गाओ तुम प्रभु के झूम झूम झूम।।1।।
सूरज में ज्योति उसकी, शशि में चमक उसी की,
चमक रहे हैं उससे तारे, घूम, घूम, घूम।।2।।
रंग रंग के फूल खिले ये, चरणों में है शीश झुकाते,
श्रद्धा से गुण तेरे गाते, चूम, चूम, चूम।।3।।
जिसने हमारी देह बनाई, शोभा उसकी वरणी न जाई,
रम रहा वह सारे में, रूम, रूम, रूम।।4।।
पक्षी तेरी महिमा गावें, कोयल बुलबुल तुमको ध्यावें,
मच रही तेरे नाम की, धूम, धूम, धूम।।5।।

भजन गा चुकने पर स्वामी जी कहने लगे - "भक्तो! सब ओर परमात्मा की ही महिमा दिख रही है। जिसको देखो वही उसका गुणगान कर रहा है। आसमान की ओर देखो, सूर्य निकल रहा है, वायु चल रही है। कितना सुन्दर जगत् दीख रहा है। यह सब ईश्वर की कृपा है। उसकी अपार दया से आज हम सब यहाँ बैठे हुए आनन्द मना रहे हैं। यदि ईश्वर की कृपा न होती तो यह संसार न होता, न हम होते, न पृथ्वी होती और न सूर्य होता। न पेड़ होते। न पक्षी होते।

शिवदत्त–स्वामी जी! जब सृष्टि नहीं थी तब क्या था?

स्वामी जी–प्रलय थी, जिसको ब्रह्म रात्रि कहते हैं। जब सृष्टि बन जाती है तो उसको ब्रह्म दिन कहते हैं। आजकल ब्रह्म दिन है। इसके बाद एक समय ऐसा आवेगा जब सब जगत नष्ट हो जायेगा। न पृथ्वी रहेगी, न सूर्य होगा, न आदमी होंगे, न पशु, पेड़ पौधे। सब के सब नष्ट हो जाएँगे। इसको कहते हैं प्रलय। जिस प्रकार रात के बाद दिन आता है और दिन के बाद रात, इसी प्रकार ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि का हाल है? हम यह नहीं कह सकते कि ब्रह्म दिन पहले हुआ या ब्रह्म रात्रि पहले हुई।

ज्ञानचन्द्र–स्वामी जी! ब्रह्म दिन को आरम्भ हुए कितने दिन बीत गये?

स्वामी जी– वर्तमान सृष्टि को बने 1972949063 एक अरब, सत्तानवे करोड़, उनतीस लाख, उनचास हजार तिरसठ वर्ष बीत गये।

रमेशचन्द्र–तो पहले कौन बना? मनुष्य पहले बने या सूर्य आदि–

स्वामी जी–ईश्वर बड़ा दयावान है। उसका सब काम नियम से होता है। उसने पहले सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि बनाये। उनको 'बसु' कहते हैं, क्योंकि इन पर प्राणी बसते हैं। जब बसने का स्थान बन गया तो उनके खाने के लिए घास, वृक्ष, फूल, फल आदि बनाये। इसके बाद कीड़े, मकोड़े, जलचर, थलचर, नभचर, पशु पक्षी उत्पन्न हुए। इसके बाद गाय, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली आदि उत्पन्न हुए।

ज्ञानचन्द्र—मनुष्य कब बना?

स्वामी जी—ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य जाति सब से उत्तम मानी जाती है। जब सब चीजें बन गईं तब ईश्वर ने मनुष्य को बनाया। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि परमात्मा को बहुत ही धन्यवाद दें।

शिवदत्त—सब मनुष्य एक (जैसी) ही बुद्धि के थे या उनकी बुद्धि अलग अलग थी?

स्वामी जी—सब मनुष्य समान बुद्धि वाले नहीं थे। कुछ महान् आत्मा थे, कुछ विद्वान् थे, कुछ साधारण बुद्धि के। कुछ ऐसे भी थे जिनमें इतनी बुद्धि भी न थी कि साधारण बात को भी समझ सकते। ईश्वर ने यह काम भी मनमाना नहीं किया था। पहले कल्प में जैसे जैसे कर्म किये थे, उसी के अनुसार उनकी बुद्धि भी बनी। सृष्टि के आरम्भ में चार ऐसी महान् आत्माओं ने जन्म लिया जो सब से श्रेष्ठ, विद्वान् और धर्मात्मा थे। इनके नाम याद कर लो- अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा। ईश्वर ने जगत् के कल्याण के लिए इनको छाँट लिया और उनको वेदों का ज्ञान दिया।

रामचन्द्र— मैंने सुना है कि वेद चार होते हैं?

स्वामी जी—हाँ, वेद चार हैं। अग्नि ऋषि ने ऋग्वेद के द्वारा लोगों को पदार्थों का ज्ञान दिया। आदित्य ऋषि ने सामवेद के मंत्रों को संगीत शास्त्र के अनुसार स्वर सहित गा गाकर लोगों को ईश्वर की उपासना सिखाई। वायु ने यजुर्वेद के द्वारा यज्ञ करना और पदार्थों को बनाना सिखाया और अंगिरा ऋषि ने अथर्ववेद के द्वारा सामूहिक रूप से वैदिक सभ्यता का ज्ञान कराया। इन्हीं की शिक्षा का फल था कि लोगों ने जमीन को जोता, खेती की। घोड़ा, गाय और कुत्ते को पालतू बनाकर अपना काम निकाला। पशुओं से दूध की प्राप्ति की। घोड़ों पर सवारी की शिक्षा दी गई। बैलों और घोड़ों को रथों में जोता गया। उनसे खेती का काम लिया।

ज्ञानचन्द्र—स्वामी जी! मनुष्यों को भी शिक्षा दी गई होगी?

स्वामी जी—हाँ, मनुष्यों को भी शिक्षा दी गई—हम कह चुके हैं कि सृष्टि के आरम्भ में हर प्रकार के लोग उत्पन्न हुए थे। बुरे भी, भले भी, बुद्धिमान भी, मूर्ख भी, कमजोर भी और बलवान् भी। ऋषियों ने मनुष्यों को शिक्षा दी और उनको सभ्य बनाने का यत्न किया। बुरे लोग अच्छे लोगों से लड़ते थे। ऋषि लोग समझा-बुझाकर उनको अच्छा बनाने का यत्न किया करते थे। जो अच्छे और बुद्धिमान लोग थे वे ऋषियों का उपदेश सुनकर विद्वान् और शूरवीर बन जाते थे। जो क्रूर और अधम लोग दूसरों को सताते थे और ऋषियों का उपदेश नहीं सुनते थे उनका दमन करने के लिए यह ऋषि लोग पुरुषों को तैयार किया करते थे। लड़ाइयाँ भी होती थीं। इनको सुरासुर संग्राम कहते हैं। इस प्रकार युद्ध विद्या का भी विकास हुआ। उपदेश देने वाले ब्राह्मण कहलाये और वीर योद्धाओं का नाम क्षत्रिय रखा गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर लोगों को सभ्य बनाने का प्रयत्न करते थे। ब्राह्मण अपने कोमल उपदेशों से और क्षत्रिय बुरे आदमियों को दण्ड देकर समाज का निर्माण करते थे।

रामचन्द्र—अब मेरी समझ में आ गया कि ब्राह्मण और क्षत्रिय कैसे बने?

स्वामी जी—जिन लोगों ने पशु-पालन और खेती का काम किया, और अपनी पैदा की हुई चीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया उनका नाम वैश्य पड़ा। इन्होंने खेती को जोता, गेहूं, जौ, चना, मसूर, उर्द, मूंग चावल आदि अन्न और आम, सेव, केला आदि अनेक प्रकार के फल पैदा किये। मकान आया 'आर्य्यावर्त' पड़ा। इसी को आजकल भारतवर्ष कहते हैं। भारतवर्ष से बाहर जाकर

आर्य लोगों ने पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण की ओर यात्रा करके वहां टापुओं और द्वीप-द्वीपान्तरों को जा बसाया। इन देशों के भिन्न-भिन्न नाम हो गये। वास्तव में भूमण्डल भर में जितनी जातियां हैं वे सब आर्य जाति की सन्तान हैं। काल की गति से इनके आचार, व्यवहार, भाषा, भूषा, चाल-चलन आदि में भेद पड़ गया। और जलवायु तथा नैतिक अथवा भौगोलिक कारणों से लोगों के सिर, नाक आदि की आकृति भी बदल गई। वस्तुतः चपटी नाक के चीनी, मोटे होंठों वाले काले रंग के हब्शी, पीतवर्ण जापानी और गोरे अंगरेज और फरासीसी यह सब एक ही जाति की सन्तान होने से मूल में आर्य थे और अब भी भाई बहन हैं। केवल रहन-सहन और विचारों में भेद पड़ गया है।

ज्ञानचन्द्र—स्वामी जी महाराज! आपने दया करके हमको नई-नई बातें बताई हैं। अब आज देरी हो गई है।

स्वामी जी—हां ठीक है। ईश्वर का गुणगान कर आज की कथा समाप्त करता हूं।

पिताजी करूं तुम्हें मैं प्यार।
तुम्हीं देव हमारे मन के, तन के तुम आधार।।
फूलों की रज गन्ध तुम्हीं हो, विद्या के आगार।
तरणि तेज के दाता तुम हो, वेदों के सुविचार।।
जीवन दीन हीन के हो तुम, सकल जगत के सार।
सब पापों से तुम्हीं बचाते, करते दया अपार।।
जल थल नभ में वास तुम्हारा, तनमन में संचार।
सत्ता का है 'सत्य' तुम्हारी, कण-कण में विस्तार।।

होली की शुभकामना

होली की शुभ कामना, अशुभ काम ना होय।
सद्विचार सद्भावना हृदय रखे सब कोय।।
हृदय रखे सब कोय मिटे सब की दुःख-दुविधा।
मनुज मात्र को मिले अन्न जल घर सुख-सुविधा।।
सज्जन की छाती छेदे वह चले न गोली।
नहीं हो कोई भूल जो होनी थी सो होली।।

आज मेरे देश का...

आज मेरे देश का विचित्र हाल हो गया है,
कैसी-कैसी खेलते है लोग यहाँ होलियाँ।
जातिवाद सम्प्रदायवाद जैसे रंग लिये,
घूमती हैं मेरे देश में अनेक टोलियाँ।
एक दूसरे का रंग बदरंग करने को,
हिन्दी के विरुद्ध ही खड़ी हैं कुछ बोलियाँ।
नीले, पीले, हरे रंग में मिलाती लाल रंग,
रुकती नहीं हैं ये आतंकवादी गोलियाँ।।

जीते विरोधी सैकड़ों निज तर्क की तलवार से

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन, अबोहर-152116)

रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी अपने निर्मल जीवन, ऊहा, उपलब्धियों, सेवा विद्वता, तप, त्याग से तो महान् थे ही उनके अमर बलिदान ने उनके व्यक्तित्व को और भी चार चाँद लगा दिये। आर्यसमाज आज जिन लोगों के हाथ में आ गया है, इनमें कुछ अपवाद को छोड़कर सब सभा संस्थाओं के सत्ताधारी पं. लेखराम जी की उपेक्षा तथा अवमूल्यन करने के पाप के भागीदार हैं। मैंने कई संस्थाओं व आश्रमों के कैलण्डर देखे हैं परन्तु किसी ने भी पं. लेखराम जी का चित्र नहीं छापा। इस पर मैं कुछ और टिप्पणी करूँगा तो कुछ भद्रपुरुष भड़केंगे और मुझे कोसेंगे। आइये! उस हुतात्मा, महात्मा और प्राणवीर के विचित्र पवित्र जीवन के विविध पहलुओं पर विचार करें।

जब दीनानगर पधारे :- दीनानगर में आर्यसमाज के आरम्भिक काल से ही बड़े बड़े शास्त्रार्थ होते आये हैं। जब ऋषि दयानन्द जी गुरदासपुर आये थे तो पौराणिक लोग दीनानगर से ही शास्त्रार्थ करने के लिए एक पण्डित को लाये थे। फिर दीनानगर में आर्यसमाज के मुसलमानों से कई शास्त्रार्थ हुए। दीनानगर में भी कई बड़े-बड़े मौलवी शास्त्रार्थ करते रहे। दीनानगर के एक कर्मठ आर्य पुरुष श्री मास्टर बख्शीश राम जी भी अच्छे शास्त्रार्थ महारथी थे। वीर लेखराम जी इस्लाम वालों की चुनौती स्वीकार करके शास्त्रार्थ के लिए दीनानगर पधारे। बाहर के जिस मौलवी ने आना था, वह सामने ही न आया। पण्डित जी के व्याख्यानों का वहाँ ऐसा प्रभाव पड़ा कि जो लोग कभी आर्य मन्दिर के पास ही नहीं फटकते थे, वे सोत्साह (स्त्रियाँ व पुरुष) पण्डित जी की अमृतवाणी सुनने समाज मन्दिर में आते थे। देवियों के आग्रह पर पण्डित जी को अपने कार्यक्रम बदलकर वहाँ और रुकना पड़ा।

सन्ध्या पर उस महान् आस्तिक ने ऐसा भाषण दिया कि दीनानगर में सन्ध्या की लहर चल पड़ी। वैदिक सन्ध्या पुस्तिका की भारी माँग को एकदम पूरा करना कठिन हो गया। आज व्यायाम के दो चार आसन करके लोग योगी व योग ऋषि होने का दम्भ करते हैं **जिसने नगरों व ग्रामों तक सन्ध्या व ईशोपासना की लहर चला दी उस महात्मा के लिये मैं किस विशेषण का प्रयोग करूँ?**

महात्मा मुंशीराम लिखते हैं :- कभी शिकरम नाम का एक वाहन हुआ करता था। श्री पं. लेखराम जी के संग महात्मा मुंशी राम आदि कई प्रतिष्ठित आर्य कहीं प्रचार यात्रा पर थे। सायंकाल समय पण्डित जी नीचे उतरकर खेतों में शौच करने गये। निवृत्त होकर भागकर शिकरम पर चढ़ गये। आते ही शिकरम के छत पर चले गये। जब देर तक नहीं उतरे तो किसी ने कहा, देखें तो इतनी देर से पण्डित जी ऊपर क्या कर रहे हैं? ऊपर जा कर देखा तो वे ईशोपासना में मग्न थे।

हो गई पेशावरी सन्ध्या? :- जब नीचे आये तो किसी ने कहा, "पण्डित जी हो गई पेशावरी सन्ध्या?" पण्डित जी कभी पेशावर में रहे थे। उस भाई का भाव यह था कि मल विसर्जन के पश्चात् सफाई के लिये जल तो मिला नहीं और आप आते ही हाथ आदि धोये बिना सन्ध्या में बैठ गये? महात्मा लेखराम बोले, सन्ध्या करना परमधर्म है और शुद्धि व आचमन आदि ये कर्म हैं। क्या मैं जल न होने पर परमधर्म से ही विमुख हो जाऊँ? यह उत्तर सुनकर सब आर्य लोग अत्यन्त प्रभावित हुए। जिसे

पण्डित लेखराम जी ने परमधर्म बताया घुसपैठिये अग्निवेश ने आर्यसमाज में घुसते ही आर्यसमाज को 'सन्ध्या हवन एण्ड कम्पनी' की गाली दे देकर आर्यसमाज के विध्वंस का अभियान छेड़ा।

भीतर की शुद्धि मुख्य है :' महात्मा मुंशी राम जी सभा के प्रधान थे और पण्डित जी पंजाब सभा के उपदेशक थे। शीत ऋतु आ गई। पण्डित जी प्रचार यात्रा से जालंधर लौटे तो अगले कार्यक्रम के लिये तभी कहीं जाना था। मेले वस्त्र धोने का कहीं समय नहीं मिला। सर्दी से बचने के लिये भी कोट आदि नहीं थे। आपने महात्मा मुंशीराम जी से कहा, "लाला जी! एक धुला कुर्ता मुझे दे दो।" महात्मा जी प्रयोजन समझ गये।

जब नहा धोकर निकलने लगे तो महात्मा जी ने देखा कि पण्डित जी ने उनका दिया उजला कुर्ता तो नीचे पहना है और मैला उसके ऊपर डाल लिया है। तब महात्मा जी ने कहा, "पण्डित जी! यह क्या कर दिया? फिर उजले वस्त्र का क्या लाभ? सब मैला कुर्ता ही देखेंगे।"

प्रभुप्रिय लेखराम बोले, "लाला जी! शरीर के साथ मैला कुर्ता पहनना हितकर नहीं। मैला बाहर भला लोगों को दीखने में अच्छा न रहे परन्तु भीतर वाला स्वच्छ और उजला होना चाहिये। भीतर के उजलेपन का विशेष महत्व है।

पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने कथा करते हुए पण्डित जी का यह दृष्टान्त देकर कहा था कि पं. लेखराम का यह जीवन-दर्शन सबसे बड़ा उपदेश है। आत्मोन्नति की यही तो कसौटी है। अब तो हमारे वक्ता भजनीक चुटकले सुनाकर अपने भाषण की रोचकता बढ़ाते हैं। ऐसे मार्मिक प्रसंग सुनाने की परम्परा को अखण्ड बनाना चाहिए।

प्राणों के निर्मोही लेखराम :- लाहौर में मुसलमान एक हिन्दू युवती को भगाकर ले गये। लाहौर में बड़े-बड़े नेता रहते थे। हिन्दू दुखी तो हुए परन्तु कोई कुछ कर न सका। एक दो दिन में पण्डित जी भी प्रचार यात्रा से लौटे। उनको भी यह समाचार मिल गया। डी.ए.वी. स्कूल का एक धर्मनिष्ट अध्यापक पण्डित जी का फैन था। पण्डित जी ने उसे कहा, यदि एक और साहसी युवक मेरे साथ हो तो उस अभागी कन्या को बचाया जा सकता है। उसने कहा, मैं आपके साथ चलता हूँ।

पण्डित जी ने कहा जुमे (शुक्रवार) के दिन मुसलमान उसे किसी मस्जिद में मुसलमान बनाकर उसका निकाह कर देंगे। पण्डित जी उस अध्यापक को लेकर मस्जिदों के चक्कर काटने निकले। एक मस्जिद में जन समूह में उन्हें दूर से एक युवती सहमी-सहमी दिखाई दी। वे समझ गये कि यह वही हिन्दू बाला है। पण्डित जी मस्जिद में आराम से चले गये। जाते ही उस कन्या का हाथ पकड़कर कहा, "चल मेरे साथ। तू यहाँ कहाँ।" भीड़ चीरकर उसे बचाकर ले आये। उसकी रक्षा के इस कार्य में वे मारे भी जा सकते थे। उन पर प्राणघातक आक्रमण भी हो सकता था।

उन्हें खींचकर ले गये :- महात्मा हंसराज डी.ए.वी. कॉलेज के प्रिंसिपल थे। आपने अपने एक लेख में कुछ संस्मरण दिये। विरोधियों का उत्तर देने के लिये और हिन्दुओं की रक्षा के लिये पण्डित जी एक चौक (चौराहे) पर व्याख्यान दे रहे थे। विधर्मी उनके रक्तपिपासु बनकर उनके पीछे पड़े हुए थे फिर भी पण्डित जी अपनी निर्भीक वाणी से व्याख्यान दे रहे थे। महात्मा हंसराज ने यह लिखा है कि कुछ धर्म प्रेमी जाति प्रेमी सज्जनों ने बड़े यत्न से, धक्के से पण्डित जी को जैसे कैसे वहाँ से हटाया और खींचकर भक्त, ईश्वरदास के घर ले गये। लोगों को उनके जीवन की सुरक्षा की चिन्ता थी। उन्हें मौत से कतई कोई भय नहीं था।

हृदय-परिवर्तन और मांसाहार की परित्याग :- पं.

लेखराम जी के पवित्र जीवन, ऋषि भक्ति तथा उनके गौरवपूर्ण बलिदान पर लिखने वाले किसी भी विद्वान् लेखक तथा नेता ने कभी यह नहीं लिखा कि पण्डित जी वैदिक धर्मी बनने से पहले मांसाहारी थे। जब आर्यसमाज पण्डित जी के हृदय में प्रविष्ट हुआ तो आपने दृढ़तापूर्वक इस पापकर्म व दुर्गुण का परित्याग कर दिया। पं. लेखराम जी के साहित्य तथा बलिदान के इतिहास के सर्वोच्च आर्य विद्वान् पं. शान्ति प्रकाश जी को भी सन् 1986 में इस तथ्य की जानकारी मैंने ही दी थी। वह इसे सुनकर चकित भी हुए और आनन्दित भी। मुझे इसका पता श्री पण्डित लेखराम जी के सन् 1893 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण लेख से चला। वे जन धन्य थे जिन्होंने वैदिक मान्यताओं को जीवन में उतारने के लिए दुर्व्यसनों का परित्याग करने का साहस दिखाया।

इसके विपरीत महात्मा हंसराज प्रिंसिपल डी.ए.वी. कॉलेज ने आर्यसमाज में बहुत आन्दोलन होने पर भी माँस खाना नहीं छोड़ा। पं. लेखराम जी ने अपनी पुस्तक श्री रामचन्द्र का सच्चा दर्शन लाला हंसराज जी प्रि. डी.ए.वी. कॉलेज को एक शर्त के साथ समर्पित की थी। वह शर्त यह थी, "यदि वह मांस का खाना छोड़ दें" परन्तु वह इतना नैतिक बल न दिखा सके। लाला लाजपतराय जी ने लिखा है कि यदि लाला हंसराज मांस भक्षण छोड़ देते तो आर्यसमाज में फूट न पड़ती।

हुआ इसके ठीक उलट महात्मा हंसराज के जीवनकाल में और फिर 1938 से लेकर आज तक भी डी.ए.वी. वालों ने माँस भक्षण के खण्डन तथा शाकाहार के मण्डन में कभी भी एक पुस्तक नहीं लिखी व छपवाई। माँसाहार के पक्ष में तो सहगल, दरबारी लाल काल में भी साहित्य छपता रहा जो मेरे पास है।

गत दिनों बहादुरगढ़ के श्री राम विचार की एक पुस्तक की कुछ अटपटी व निराधार बातों (यथा स्वामी सर्वदानन्द जी मनघड़न्त पूर्वनाम मूलचन्द प्रचारित कर दिया) की मैंने समीक्षा की तो सटपटाकर रामविचार ने विचित्र रामलीला कर दिखाई। इसने 'आर्यमित्र' में अपनी पुस्तक की मनघड़न्त गप्पों पर खेद प्रकट करने के लिये महात्मा हंसराज के मांस भक्षण की चतुराई से वकालत की। मैंने सरकारी गुप्तचर ज्वालामुखी देवी के भक्त मांसाहार के पैगम्बर रायबहादुर मूलराज तथा रायबहादुर लालचन्द द्वारा कई कई सन्तानें होने पर भी अधेड़ आयु में अपनी पुत्रियों तुल्य युवा कन्याओं से विवाह करने की बात किसी प्रसंग में लिखी तो इस देवता ने उनका भी बचाव करते हुए मान्य प्रो. शरर जी पर वार कर दिया। मर्यादा की सीमायें लाँघते हुए एक मनघड़न्त कहानी देकर मेरे पुत्र को भी लपेट लिया। आश्चर्य का विषय तो यह है कि आर्य मित्र के सम्पादक ने भी ऐसे घृणित अंश छाप दिये। बिल्ली के भागों छिक्का टूटा वाली कहावत ऐसे सम्पादकों पर चरितार्थ होती है।

पण्डित लेखराम की बहुमुखी प्रतिभा :- आर्यजन यही भ्रम पाले हुए हैं कि पण्डित जी ने केवल मुसलमानों से शास्त्रार्थ किये। पण्डित लेखराम जी ने ईसाइयों व पौराणिकों से भी कई ऐतिहासिक शास्त्रार्थ किये। आर्यसमाज में 'पुनर्जन्म' विषय पर पहला उत्तम खोजपूर्ण ग्रन्थ पं. लेखराम जी ने ही लिखा। पश्चिमी गोरे लेखकों के नामों की माला जपने वाले वर्तमान के आर्यसमाज लेखक इस ऐतिहासिक ग्रन्थ की महिमा कतई नहीं जानते।

पं. लेखराम आर्य समाज के प्रथम तेजस्वी पत्रकार थे। आपके लेख व सम्पादकीय विदेशों में भी चाव से पढ़े जाते थे। पण्डित जी आर्यसमाज में एक ऐसे कवि हुए हैं जिनके कुछ पद्य साठ वर्ष से भी अधिक समय तक आर्यसमाजियों को अनुप्राणित करते रहे। उनका एक पद्य देश भर में उत्सवों के विज्ञापन की शोभा हुआ करता था। विज्ञापनों के ऊपर यही पद्य छपा करता था :-

"नगाड़ा धर्म का बचता है आये जिसका जी चाहे।

सदाकत वेद अकदस (पवित्र) आज़माये जिसका जी चाहे।।"

पण्डित जी की शूरता, वीरता, बलिदान तथा शास्त्रार्थ शैली की उत्कृष्टता ने उनके अनेक अन्य-अन्य गुण दबा लिये। अपनी डिग्रियों की धौंस जमाने वालों ने पण्डित जी के कवि रूप पर कभी कुछ लिखा ही नहीं। कौन श्रम करे? पण्डित जी उर्दू तथा फ़ारसी के उच्च कोटि के कवि थे। जहाँ अनुसंधान तथा शास्त्रार्थ करने, विरोधियों का उत्तर देने में उनकी एक लम्बी शिष्य परम्परा है वहीं कविवर लेखराम जी की भी एक शिष्य परम्परा है। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं. भोजदत्त, कुँवर सुखलाल, ठाकुर अमर सिंह, श्री महाशय जैमिनी जी, 'सरशार' श्री मनोहर लाल जी शहीद, प्रो. उत्तम चन्द जी 'शरर' पं. लेखराम जी की शिष्य परम्परा के ही कवि थे। मैं तो श्रद्धेय पं. चमूपति जी को भी इसी परम्परा का कवि मानता हूँ। (इस लेख के लेखक प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी स्वयं उसी परम्परा के एक उच्च कोटि के कवि हैं- सम्पादक)

पण्डित जी को मौत की धमकी देते हुए बर्तानवी नबी ने एक लम्बी फ़ारसी कविता में यह लिखा था :-

'बतरस अज़ तेग़े बुर्राने मुहम्मद'

अर्थात् 'मुहम्मद की तेज़ तीखी काटने वाली तलवार से डर।

महाकवि शंकर तथा 'प्रकाश' जी ने पं. लेखराम जी के तर्कों व पद्यों को 'रामबाण' सदृश माना है। तब पण्डित जी ने इसी छन्द में अपनी फ़ारसी कविता में उत्तर देते हुए लिखा था :-

दरी राह गर कुशन्दम वर बिसोज़न्द'

अर्थात् मुझे इस वेद-पथ पर भले ही काट दो, मार दो या जला दो मैं इस राह से नहीं हटूँगा। मैं ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरता।

यहाँ प्रसंगवश बता दें कि श्रीमान भवानीलाल जी भारतीय का यह लिखना कि पण्डित लेखराम जी की फ़ारसी भाषा की शिक्षा बहुत थोड़ी थी या उन्हें फारसी का बहुत थोड़ा ज्ञान था- यह भारतीय जी का भ्रम व अज्ञान है। पण्डित जी ने फारसी में हमें गद्य व पद्य दोनों दिये हैं। पं. जी की फारसी भाषा की योग्यता का सहीं मूल्यांकन कोई फारसी जानने समझने वाला ही कर सकता है।

एक और परम्परा चला दी :- कभी किसी आर्य साहित्यकार ने इधर ध्यान नहीं दिया कि पण्डित लेखराम जी एक और परम्परा के जनक थे। पण्डित जी ने मिर्ज़ा को उसी के छन्द में उत्तर देकर एक परम्परा को चलाया। आगे चलकर पं. चमूपति जी, पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय, प्रो. तिलोकचन्द जी 'महरूम', आदि आर्यों ने भी इस परम्परा को आगे चलाया। उर्दू के मूर्धन्य कवि श्री दुर्गा सहाय 'सरूर' पं. लेखराम जी के सच्चे व पक्के भक्त थे।

शास्त्रार्थ परम्परा के जनक :- महर्षि दयानन्द जी नें कबीर पंथियों की S.O.S. (हमें बचाओ) की पुकार सुनकर चाँदापुर के मेला पर शास्त्रार्थ समर में ईसाइयों व मुसलमानों दोनों से लोहा लिया। दोनों दल सूचना दिये बिना मैदान छोड़कर चले गये। पं. लेखराम जी ऋषि से प्रेरणा पाकर शास्त्रार्थ समर में उतर कर इस परम्परा के जनक बने। उनकी परम्परा के मानस पुत्रों की सूची बहुत लम्बी है। क्षमा करना यहाँ सबके नाम नहीं दिये जा सकते फिर भी कुछ एक के नाम ये हैं :- पं. कृपराम, महात्मा मुंशीराम, श्री आत्मराम, पं. मुरारीलाल, पं. बिहारीलाल, पं. भोजदत्त, पं. रामचन्द्र देहलवी, पं. धर्मभिक्षु, मास्टर लक्ष्मण, पं. मनसाराम, मौलाना हैदर शरीफ (हैदराबादी), ठाकुर अमरसिंह, पं. बुद्धदेव मीरपुरी, आचार्य देव प्रकाश, पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय, पं. शान्ति प्रकाश, महाशय चिरंजीलाल

प्रेम, श्री मनोहर लाल शहीद, श्री उत्तमचन्द 'शरर', पं. नरेन्द्र जी हैदराबाद ये सब पण्डित लेखराम की परम्परा के शास्त्रार्थ महारथी थे।

इस परम्परा को अखण्ड बनाये रखिये :- श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने मुम्बई के सान्ताक्रूज समाज में मेरे एक व्याख्यान के पश्चात् यह टिप्पणी की, "राजेन्द्र तुम पं. लेखराम की परम्परा के अब अन्तिम विद्वान् हो।" यह वाक्य सुनकर मैं हिल गया। क्या मेरे साथ ही यह परम्परा समाप्त हो जावेगी। मैंने इस परम्परा को अखण्ड बनाये रखने पर अपनी सारी शक्ति लगाने का तभी निश्चय कर लिया। मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि मेरे जीते जी प्रिय धर्मेन्द्र जी 'जिज्ञासु', श्रीयुत राजवीर, श्री संजीव, श्री अंकुश, श्री राजेश, श्री वाशी आदि कई रत्न पण्डित लेखराम की परम्परा को अखण्ड बनाने के लिये समर्पण भाव से कार्यरत हैं।

मैं गत् कई वर्षों से विधर्मियों के प्रत्येक वार प्रहार पर प्रतिकार करने के लिये लेखनी तथा वाणी से सेवा कर रहा हूँ। सत्यार्थ प्रकाश पर अग्निवेश ने वार किया फिर मुसलमान जब कोर्ट में पहुँचे तो मैंने रामविचार जी से कहा, सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा के लिए कुछ लिखिये। रामविचार मुसलमान था, आर्यसमाज में कारणवश आ गया। इस्लाम के बारे में बहुत कुछ जानता है। उसने मुझे स्पष्ट कहा, "यह कार्य तो आप ही कर सकते हैं। क्यों? इसलिए मेरा सिर सस्ता है। मेरे पेट का माप हत्यारों की कटार, तलवार व छुरी जानती है।

बलिदान की परम्परा :- महर्षि का अमर बलिदान आर्यसमाज को सदा उभारता रहा है। पं. लेखराम जी ने भरी जवानी में बलिदान यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देकर आर्यसमाज में बलिदान की परम्परा चला दी। वीर तुलसी राम, वीर राम रखा, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई श्यामलाल, शिवचन्द्र जी, वीर वेदप्रकाश, वीर धर्मप्रकाश, हुपला के शहीद, वीरराजपाल, भक्त फूलसिंह, वीर परमानन्द, वीर रामचन्द्र, वीर मेघराज आदि सब पं. लेखराम जी की परम्परा को अखण्ड बनाने वाले पुण्यात्मा हुतात्मा हैं।

पं. लेखराम जी की विश्वव्यापी छाप :- पं. लेखराम ही एक ऐसे आर्य नेता हुए हैं जिनके बलिदान पर अमरीका में भी एक पत्रिका में लेख छपा था। आज भी विदेशों में 'कुल्लियाते आर्य मुसाफिर' की मांग है। पुराने विधर्मी लेखकों (यथा सर सैयद अहमद खाँ, मिर्ज़ा गुलाम अहमद, मुहम्मद अली, मौलाना इब्राहिम, डॉ. इकबाल, मौलवी सना उल्ला, मौलाना महबूब अली, मौलाना शिबली आदि) के साहित्य पर तो पं. लेखराम का प्रभाव देखा ही जा सकता है मौलाना न्याजपुरी की रंगत पं. धर्मभिक्षु जी तथा आचार्य देव प्रकाश से न्यारी तो नहीं है। यह किसका प्रताप है? यह सब पं. लेखराम जी की लेखनी का ही चमत्कार है। इस युग में जो नया इस्लामी साहित्य देश विदेश से छप रहा है, उसे कोई पढ़े तो। आंखें खोल कर विभिन्न मतों का नया साहित्य पढ़ने वाले जानते हैं कि पूरे विश्व साहित्य पर पं. लेखराम जी के कालजयी साहित्य, समीक्षाओं तथा तर्कों की गहरी छाप है। 'अल्लाह की आदत' तथा 'दो इस्लाम' जैसी पुस्तके पढ़कर जागरुक पाठक जान जायेंगे।

आर्यसमाज में वे लेखक जिनको कभी विधर्मियों के किसी लेख व पुस्तक का उत्तर देने की हिम्मत ही नहीं हुई वे लोग आर्य सामाजिक पुस्तकों के संस्करणों की सूचियाँ बना बना कर अपनी खोज का ढोल पीट पीट कर किसी को आज तक तो आर्य बना नहीं सके। आर्य धर्म की रक्षा का मार्ग केवल वही है जो पं. लेखराम जी ने सुझाया, दिखाया व बनाया है।

□□

काशी और आर्य समाज कुछ ऐतिहासिक प्रसंग

(प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदर अबोहर-152116)

काशी में ऋषि के जीवन काल में ही संस्कृत के बड़े-बड़े नामी विद्वान् थे परन्तु वेद के पठन-पाठन से दूर थे। वेद पूजे तो जाते थे, पढ़े नहीं जाते थे। केवल पं. बाल शास्त्री वा स्वामी विशुद्धानन्द ही दो ऐसे विद्वान् थे जो वेद के लिए कुछ कर सकते थे। ऋषि ने बार-बार इनको कहलवाया कि वे अपने भरण पोषण की चिंता न करें, वे काशी में वैदिक धर्म का झण्डा गाड़ दें। उनके निर्वाह की ऋषि व्यवस्था करेंगे। वे वैर विरोध की चिंता न करें। ऋषि ने कहा था कि ईंटें पत्थर वह स्वयं खायेंगे। ये महानुभाव काशी में सुरक्षित रहकर कार्य करें परन्तु ये दोनों इतना साहस न बटोर सके।

काशी के पौराणिक पण्डितों ने सदैव यह यत्न किया कि काशी में आर्य समाजियों के पाँव न टिकने पाएँ। तथापि समय-समय पर दिलजले आर्य वीरों ने सब चुनौतियों का सामना करते हुए काशी में वैदिक धर्म का झण्डा गाड़ने का सत्प्रयास किया। ऋषि जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् स्वामी रामानन्द जी वा पं. रामप्रकाश जी दो आर्य विद्वानों की सेवाएँ आर्यसमाज काशी को प्राप्त रहीं। इन दोनों ने काशी वा दूर निकट के अन्य स्थानों पर भी जाकर वैदिक धर्म का सन्देश, उपदेश दिया।

1-11 मार्च 1888 ई. को आर्यसमाज बांकेपुर का वार्षिकोत्सव था। उसमें इन दोनों महानुभावों के व्याख्यान उपदेश हुए। स्मरण रहे कि तब बाँकेपुर का उत्सव अन्तः प्रान्तीय प्रसिद्धि रखता थ इसमें बिहार, उ.प्र., बंगाल वा पंजाब के कई प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

पाखण्ड खण्डन का साहस :- काशी में उन दिनों एक पाखण्डी साधु पीपल से रस्सा बांधकर उलटा लटक जाता। नीचे आज जलाई जाती। जब तक आग जलती रहती, यह महाराज झूलते रहते। लोग इन्हें चमत्कारी मानते थे। इनसे कामनाओं के पूर्ति के लिए राख लेते, ये राख के लिए पैसे लेते थे। विशुद्धानन्द महाराज तब जीवित ही थे परन्तु इस पाखण्ड को देख सुनकर मौन साधे रहे। आर्य लोग ऐसे ढोंगियों की तब भी पोल खोलते रहे।

पं. अम्बिकादत्त व्यास :- ऋषि जीवन का अध्ययन करने वाले पं. अम्बिकादत्त व्यास के नाम व काम से परिचित हैं, हम यहाँ क्या विशेष लिखें। ऋषि का इन्होंने जी भर-कर विरोध किया। लेखनी से भी वा वाणी से भी परन्तु वाणी से भले ही कुछ कहते थे, मन वा मस्तिष्क से सच्चाई को जानते वा मानते थे। स्वामी ईश्वरानन्द जी वैदिक धर्म प्रचार के लिए भागलपुर गये। तब काशी के ऋषि विरोधियों का यह साथी, पं. अंबिकादत्त व्यास भी स्वामी जी का व्याख्यान सुनने कालेज हाल में आया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि पं. जी ने श्री स्वामी ईश्वरानन्द की बहुत प्रशंसा की। लोगों ने इन्हें कहा कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर लें। काशी शास्त्रार्थ इन्हें अभी भूला नहीं था अतः आपने शास्त्रार्थ करने से इनकार कर दिया। कलकत्ता आर्यसमाज ने इन्हें दो तार दिये कि शास्त्रार्थ कर लें परन्तु पं. जी ने उत्तर न दिया। कारण यह था कि इनके विचार अब बदल चुके थे।

उन्हीं दिनों पं. रुद्रदत्तजी कलकत्ता आर्यसमाज के उपदेशक थे। उन्होंने भी शास्त्रार्थ के लिए बारम्बार कहा किन्तु वे समाज के तारों वा पत्रों का उत्तर भी न दिये। पं. अम्बिकादत्त जी के मित्रों ने भी उन्हें शास्त्रार्थ के लिए उत्साहित किया परन्तु वह न माने।

यद्यपि इस समय हमारे सामने कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं तथापि हमारा मत है कि 1887-1888 ई. में ही पं. कृपाराम शर्मा (स्वामी दर्शनानन्द जी) काशी पहुँच चुके थे। 1889 ई. में तो वही आर्यसमाज काशी के प्रधान थे। तब तक स्वामी जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों का सृजन नहीं किया था परन्तु काशी में वैदिक साहित्य के प्रकाशन वा बिक्री के लिए उन्होंने अपना झण्डा गाड़ दिया था। उपनिषद्, दर्शन वा सामवेद संहिता उनके यहाँ से तब प्राप्त होती थीं। उनके साहित्य के विज्ञापन पत्रों में छपे मिलते हैं।

यद्यपि पं. कृपाराम ने शास्त्रार्थों वा साहित्य सृजन के क्षेत्र में उतरकर कविताएँ लिखना छोड़ गये परन्तु, जबआप काशी में रहते थे तो काव्य रचना भी करते थे। वह 'शर्मा' उप नाम से लिखते थे। खेद है कि किसी ने उनकी रचनाओं का संग्रह करने का पुरुषार्थ न किया। हमारे पास उनकी दो रचनाएँ हैं। एक के कुछ पद यहाँ देते हैं। इससे परमोत्साही कृपाराम की धर्म धुन वा उर के अरमानों का परिचय मिलता है।

बुत परस्ती को कभी दिल में न लाऊँ तो सही।
कुफर के शीशे पै इक पत्थर गिराऊँ तो सही।।
क्या हुआ मुझको अगर तुम पाओ हो खोया हुआ।
मैं दुरे मकसूद को खो खो के पाऊँ तो सही।।
तुम अटकते हो अटक के पार तक जाने से भी।
धर्म के मकसद से मैं लण्डन को जाऊँ तो सही।।
तुम पुराणों को समझते हो जो पैगामे खुदा।
इन सहीफों को मैं डैड लैटर बनाऊँ तो सही।।
जाहिलों को कहते हो पण्डित जरा ठहरे रहो।
शूद्रों में इनको गिन गिनकर मिलाऊँ तो सही।।
खिरमने तसलीस के अम्बार की परवाह नहीं।
वेद के परचार से बिजली गिराऊँ तो सही।।
जाँ निसारी ने है जिसको मेरे दिल में घर किया।
उसके उपदेशों को घर-घर में सुनाऊँ तो सही।।
और होते हैं जो रस्ता नाप कर रह जाएँ हैं।
सिर के बल आर्ज सभा में रोज जाऊँ तो सही।
लोग कहते हैं कि 'शर्मा' आर्यों का दास है।
इस खबर को हिन्दुओ! सच कर दिखाऊँ तो सही।।

यह रचना तो बहुत लम्बी है। हमने कुछ एक पद ही यहाँ दिये हैं।

जब स्वामी दर्शनानन्द (पं. कृपाराम जाने जाते थे) ने काशी में वैदिक धर्म का झण्डा ऊँचा किया तो उनके तप, त्याग शूरता की सर्वत्र धाक थी। आर्यसमाज के एक प्रमुख नेता ने तब एक पुस्तक में लिखा था- "पं. कृपाराम शर्मा की ओर देखो उन्होंने अपने पिता का बीस सहस्र रुपया इस उमंग में व्यय कर दिया कि वैदिक धर्म का ध्वज काशी में खड़ा किया जावे क्योंकि काशी हिन्दुओं की विद्या का वह बड़ा दुर्ग है।"

पं. लेखराम जी ने यह भी लिखा है कि जबसे काशी से पं. कृपाराम आए हैं, उनके आने के पश्चात् वहाँ समाज का कार्य शिथिल हो गया। लगता है कि श्री पं. कृपाराम 1894 ई. तक काशी छोड़ चुके थे। समाज के कार्य में वहाँ सबसे बड़ी रुकावट काशी के ब्राह्मण थे जो आर्यसमाज का अस्तित्व सहन करने को तैयार न थे।

जब आर्यसमाज में उपदेशक कक्षा खोलने का विचार आया तब आर्यसमाज के शीर्षस्थ कई विद्वानों ने अपनी सम्मति देते हुए यह लिखा था कि काशी में उपदेशकों का निर्माण किया जावे, साथ ही यह लिखा कि वहाँ के आर्यसमाजी द्वेषी पण्डित आर्य विद्यार्थियों को दिशा भ्रष्ट करने के लिए सब कुछ करेंगे।

प्राणवीर लेखराम काशी पधारे- पण्डित जी कितनी बार काशी गये इसका ठीक ठीक पता लगाना आवश्यक है। वह एक से अधिक बार काशी पधारे, ऐसा हमारा

विचार है। ऋषि जीवन की खोज के लिए वह प्रथम बार 1889 ई. में काशी आए। रक्त साक्षी पं. लेखराम एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें वैदिक धर्म का प्रचार किए बिना चेन न आता था। ऋषि जीवन की तो खोज की सो की, वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार भी किया। तब आपने काशी में आर्यसमाज पर एक सुन्दर लेख देकर आर्य जगत् को काशी समाज की सहायता के लिए प्रेरित किया। उन दिनों आर्यसमाज काशी ने एक पाठशाला (उपदेशक विद्यालय) स्थापित किया था। इसको आर्थिक सहयोग कई समाजों से मिला परन्तु सबसे अधिक पं. कृपारामजी शर्मा ने ही उठाया। पण्डित जी के लेख से पाठकों को पता चलेगा कि काशी की पण्डित मण्डली में इस पाठशाला वा समाज की उन्नति से खलबली सी मची हुई थी।

काशी ने पराजय स्वीकार की परन्तु किया कुछ नहीं- आर्य समाज के निरन्तर प्रचार का यह फल निकला कि काशी के पण्डितों को यह स्वीकार करना पड़ा कि वेद के अर्थ जाने बिना कार्य न चलेगा। आर्यसमाजी बात-बात पर वेद के प्रमाण मांगते थे।

काशी में एक पण्डित रामजी होते थे। आपने यह सुझाव दिया कि एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की जावे जिसमें सस्वर वेद पढ़ाए जावें और साथ ही वेद के अर्थ भी सिखाए पढ़ाए जावें। काशी के पोंगा पंथियों ने कई बार यह स्वीकार किया कि उन्हें वेद के अर्थ लगाने नहीं आते। काशी शास्त्रार्थ के एक वर्ष पश्चात् एक सज्जन ने यह स्पष्ट माना था कि काशी में कोई भी वेद का अर्थ लगाना नहीं जानता। इस कमी को दूर करने के लिए वैदिक पाठशाला का प्रस्ताव रखा गया।

यहाँ हम इतना और निवेदन कर दें कि वीरवर पं. लेखराम जी ने ऋषि जीवन में तो काशी शास्त्रार्थ पर लिखा ही है, आपने अपने जीवन काल में भी काशी शास्त्रार्थ व हुगली शास्त्रार्थ पर एक लेख दिया था। इसमें बड़ी खोजपूर्ण सामग्री दी है।

निश्चय ही आर्यसमाज काशी का इतिहास बड़ा रोचक है। महर्षि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ से लेकर श्री पं. महेश प्रसाद जी की सुपुत्री कल्याणी देवी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम.ए. में वेद विषय लेने तक, काशी के आर्यसमाजियों का इतिहास संघर्ष व साधना का इतिहास है। काशी की पण्डित मण्डली भले ही अपनी विजय का ढोल पीटती रही है परन्तु ऋषि के जीवन काल में ही बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु जी) ऋषि के विचारों से प्रभावि हो गये और उन्होंने काशी वालों को कड़े शब्दों में लताड़ा। स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी ने आर्य हिन्दू नाम की व्यवस्था पर हस्ताक्षर करके ऋषि की दिग्विजय प्रमाणित कर दी। कल्याणी देवी जी को वेद पढ़ने का अधिकार देकर भले ही बाद में वह कक्षा ही बन्द दी गई परन्तु उस समय के काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. राधाकृष्णन जी ने Religion and Society में स्वयं यह सिद्ध कर दिखाया है कि प्राचीन काल में भारत में देवियों को वेद अध्ययन का अधिकार था। स्मरण रहे कि यह सब कुछ कल्याणी देवी जी के लिए आर्यसमाज के संघर्ष के पश्चात् लिखा गया। उस समय डॉ. राधाकृष्णन चुप ही रहे।

आवश्यकता अब भी है कि कोई स्वामी दर्शनानन्द, कोई पं. महेश प्रसाद वा पं. विद्यानन्द जी जैसा साधक काशी में डेरा डालकर काशी वालों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करे। श्री पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने भी इस दिशा में अच्छी साधना की, परन्तु अंधेरा अब भी उजाले को चुनौती दे रहा है। ऋषि सन्तान के तप त्याग व लग्न की परीक्षा है। देखें कौन आगे आता है?

❑❑

हम परम्परा के बलिदानी

हम परम्परा के बलिदानी, बलिदान हमारी परम्परा।
हर आर्यवीर है धर्म निष्ठ, सब कसौटियों पर रहा खरा।।

1. राणा प्रताप और पृथ्वीराज हम्मीर वीर और दुर्गादास।
गोखले, तिलक, वल्लभ पटेल और भगत सिंह बाबू सुभाष।।
तेरे श्रद्धानन्द और लेखराम ने रक्त रंगी थी वसुन्धरा....
पर परम्परा के बलिदानी....

2. अशफाक, चन्द्रशेखर, ऊधम, जोरावर फतहसिंह बच्चे।
लक्ष्मण बन्दा, बिस्मिल व शिवा और बाल हकीकत से कच्चे।।
एक छोटा सा भी बाल वीर अपने प्रण से टारे न टरा.....
पर परम्परा के बलिदानी....

3. लखि खुदीराम और राजगुरु जिन्हें बलिदानों का लगा चाव।
भामाशाह दे दी सब सम्पति, सांगा खाए अनगिनत घाव।।
है धन्य लाजपतराय युवाओं में अतुलित उत्साह भरा.....
पर परम्परा के बलिदानी....

4. पद्मावति पतिव्रत धर्म रखा, रणभूमि लड़ी झाँसी रानी।
नहीं जनि पाई कोई धरती तेरे दयानन्द सा बलिदानी।।
भारत माँ का ये पूत कभी मृत्यु के भय से नहीं डरा.....
पर परम्परा के बलिदानी....

5. इस आर्यावर्त में संन्यासी राजा और बाल, युवा, नारी।
निर्वाही अपनी परम्परा अपनाई मानवता प्यारी।।
गणना में समर्थ न 'गुण ग्राहक' इस परम्परा का नहीं शिरा........
पर परम्परा के बलिदानी, बलिदान हमारी परम्परा

महिमा आर्य समाज की

(रामनिवास 'गुण ग्राहक' 09971171797)

आज बताता हूँ मैं तुमको, महिमा आर्य समाज की।
पावन पुण्य पताका है ये, दयानन्द ऋषिराज की।।

1. इस्लामी अंग्रेजी झंझावातों से जब भारत जूझ रहा।
ले ईश्वर का नाम मूर्खतावश पत्थर को पूज रहा।।
कैसे रहूँ, किधर को जाऊँ नहीं किसी को सूझ रहा।।
पढ़ा-लिखा जाकर अनपढ़ से निज भविष्य को बूझ रहा।।
हुई अपार दया ऐसे में स्वामी जी महाराज की .... पावन पुण्य पताका है ये ....

2. गहन विचार किया ऋषिवर ने, इस अनर्थ की भूल कहां?
विश्व-गुरु भारत कर बैठा महाभयंकर भूल कहां??
भूमण्डल सम्राट बना है क्यों इनकी पगधूल यहाँ?
सत्य धर्म और सदाचार की परिभाषा प्रतिकूल यहाँ!!
घोर अविद्या, पराधीनता, बात कोढ़ में खाज की....पावन पुण्य पताका है ये ....

3. देखा ऋषि ने वेद हीनता दुर्गतियों का कारण है।
शिक्षित और सुधारक जन भी, शासक का ही चारण है।।
भारत के इन अद्य रोगों का, करना मुझे निवारण है।
तपः साधना द्वारा करके दिव्य तेज को धारण है।।
ऋषिवर ने धज्जियाँ उड़ा दीं, हर एक बुरे रिवाज की....पावन पुण्य पताका है ये ....

4. सर्वजयी योद्धा बन कर, सब जीवन भर संग्राम किया।
चिन्तनधारा में परिवर्तन, लाने वाला काम किया।।
प्रबल प्रवाह पतन पथ पर था, पुरुषार्थ से थाम लिया।
वैचारिक संक्रान्ति ने ही, स्वतंन्त्रता परिणाम दिया।।
ऋषिवर से ही हमें मिली थी परिकल्पना स्वराज की....पावन पुण्य पताका है ये ....

5. जग के पूर्ण उपकार हेतु प्यारे ऋषि का आह्वान है ये।
दयानन्द के दिव्य ध्येय की, पूर्ति का अभियान है ये।।
श्रद्धा तर्क समन्वय वाला, वेद धर्म विज्ञान है ये।
सत्य कहें तो मानवता को, ईश्वर का वरदान है ये।।
रक्षक है 'गुण ग्राहक' ये तो इस भारत की लाज की....पावन पुण्य पताका है ये ....

Printed, Published and Owned by **श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य** Printed at **तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीताराम, दिल्ली-6** (name of printing press with full Address) and published from **केरल वैदिक मिशन, 468, नीमड़ी कॉलोनी, नई दिल्ली** (Place of publication with full address) Editor **श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य।**